प्रथम अध्याय

थेर एवं थेरीगाथा का परिचयात्मक अध्ययन

(क) विषय प्रवेष

थेरगाथा एवं थेरीगाथा पालि साहित्य की लघु काव्य रचना है। थेर–थेरियों के मुख से निकले उदान वचन गाथाओं में संगृहीत सम्पूर्ण पालि साहित्य की प्रतिनिधि काव्य धरोहर है। यहाँ ''देखन में छोटन लगे, घाव करे गम्भीर'' की उक्ति अक्षरषः दृष्टिगत होती है। तत्कालीन साहित्यिक पृष्ठभूमि में लिखी गई धार्मिक आस्थाओं का संवहन करती हुई थेर–थेरियों की उक्तियाँ–विमुक्ति–रस, अवगाहन करने का भरपूर आनन्द पाठक को देती हैं। थेर एवं थेरियों का नाम, गाम, अर्थपूर्ण विचार, जो अट्ठकथाओं में उद्धरित हुआ है, एक अपूर्व साहित्यिक आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक चित्र को पाठक के विचार पटल पर सहसा आघृत करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में थेर एवं थेरीगाथा का प्रस्तुत अध्ययन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाक्रम को आज के संदर्भ में देखने की दृष्टि से किया जा रहा है। जम्बुद्वीप (भारत) आदिकाल से ही श्रमण संस्कृति का केन्द्र बिन्दु रहा है। प्रागैतिहासिक काल में भी यह नाना जातियों और संस्कृतियों का आश्रय रहा है उनकी विभिन्न जीवन– विधाओं के संघर्ष और समन्वय के द्वारा भारतीय संस्कृति का विकास हुआ है इन संस्कृतियों के विकास में आर्यों का जम्बुद्वीप में आना और अपनी यज्ञ–परायण संस्कृति को पूर्व में वसी जातियों पर किसी प्रकार उपाश्रित करना एक महत्वपूर्ण घटना है। यह घटना वैदिक तथा परवर्ती भारतीय सभ्यता के अभ्युदय का कारक हैं। यह भी–स्वीकार्य हो गया था कि भरतीय सभ्यता के अभ्युन्नत तत्त्व मूलतः आर्यो की देन हैं। परन्तु हड़प्पा संस्कृति से पता चलता है कि भारत में आर्यो के आक्रमण को एक सभ्य, सुसंस्कृत, पूर्णनागरिक प्रदेष में वर्वर जाति का प्रवेष समझना चाहिए।[1] आर्यो ने आर्येतर सभ्यता को ध्वस्त कर अपनी विषिष्ट भाषा, धर्म और समाज को सम्पूर्ण जम्बुद्वीप में प्रतिष्ठित किया तथापि यह निर्विवाद है कि यह संस्कृतिक विध्वंस निरन्वय विनाष नहीं था और श्रमण सांस्कृति के अनेक तत्त्व परवर्ती आर्य सभ्यता में अंगीकृत हुए। आर्य तथा आर्येतर सांस्कृतिक परम्पराओं का यह समन्वय भरतीय सभ्यता के निर्माण की आधार षिला सिद्ध हुई। इसका प्रभाव एक ओर उत्तर वैदिक कालीन समाज रचना में स्पष्ट देखा जा सकता है, दूसरी ओर उस बैद्धिक और आध्यात्मिक आन्दोलन में, जिसका चरम परिणाम बौद्धधर्म का अभ्युदय था।[2] आर्य समाज का प्रारम्भिक रूप एक विजयी समाज का था जिसमें शक्ति और प्रतिष्ठा ब्राह्मणों के हाथ में थी। राजन्य शासक थे और ब्राह्मण उनके पुरोहित, शेष दास थे। सम्भव है कि दास–वर्ग में सिन्धु संस्कृति के अनेक उन्मूलित किसान और कारीगर थे। एक वर्ग मुनि और श्रमण का था, जो ब्राह्मणेत्तर, तथा वैदिक संस्कृति के अनभ्यन्तर प्रतीत होते हैं[3] वैदिक काल में श्रमण ब्राह्मण प्रधान वैदिक समाज के बहिर्भूत, एक प्राचीन और उद्धात आध्यात्मिक परम्परा के उन्मूलित अवषेष थे। जैन और बौद्ध साहित्य में श्रमणो के विषय में जो सामग्री प्राप्त होती है उसके विवेचन से इस तथ्य को स्वीकार करने मे

जरा भी संदेह की गुंजाईष नहीं रहती कि ब्राह्मण और श्रमण परस्पर में विभक्त और एक दूसरे के विरोधी थे। ई. पू. चतुर्थ शताब्दी में यूनानियों ने उनके विभेद का उल्लेख किया है।[4] महाभाष्यकार पतंजलि ने श्रमणों और ब्राह्मणों दोनों का शाष्वत विरोध बतलाया है।[5] शंकराचार्य ने कहा है कि वैदिक धर्म द्विविध हैं, प्रवृत्तिलक्षण और निवृत्ति–लक्षण[6] यह ध्यान रखना चाहिए कि पूर्व वैदिक कालीन ब्राह्मण धर्म केवल निवृति लक्षण था। निवृतिलक्षण धर्म के अनुयायी इस समय केवल श्रमण थे। आचार्य नरेन्द्र देव ने भी बौद्ध धर्म दर्षन में ब्राह्मणों और श्रमणों की दो सांस्कृतिक परम्पराओं के प्राचीन काल में होना स्वीकार किया है।

मध्य और उत्तर वैदिक काल में दूर तक प्रभाव डालने वाले समाजिक और धार्मिक परिर्वतन हुए। भाषा का परिवर्तन और चातुर्य वर्ण का विकास आर्य और आर्येतर जनता के पर्याप्त सम्मिश्रण की ओर संकेत करता है। स्वयं वेद के संकलन कर्ता महर्षि व्यास में अनार्य रक्त का समावेष था। पूर्व वैदिक काल की विषः– जनता–वैष्यों और शूद्रों में विभक्त हो गई थी। शूद्र वर्ण में आर्येतर जाति की प्रधानता निर्विवाद है, पर केवल आर्येतर ही शूद्र नहीं थे और न अन्य वर्णो में आर्येतर रक्त का अभाव था।[7] एक ओर समाज जातियों और संस्कृतियों की संकीर्ण मानसिकता से बोझिल हो रहा था। पुरानी विद्याओं पर संषय हो रहा था। अतः वैदिक धर्म भी परिवर्तन ग्रस्त था और देवताओं के प्राधान्य तथा यज्ञ द्वारा आत्मविद्या की ओर विकसित हो रहा था। देवताओं की प्रसन्नता से आत्म प्रसन्नता की ओर यह विकास प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर दिग्दर्षक बन गया। किन्तु निवृत्ति मार्ग का यह उन्मेष अभी कुछ हो प्रगतिषील विचारकों में हुआ था। इस परिवर्तन का कारण मुख्यतया श्रमण विचार धारा का प्रभाव था जिसके लिए जातीय और सांस्कृतिक सश्रिण तथा ब्राह्मण धर्म के आन्तरिक विकास ने अब मार्ग प्रषस्त कर दिया था।

अभी तक यह देखने का प्रयास किया गया कि भारत प्रागैतिहासिक काल से ही आध्यात्मिक चिंतन का केन्द्र रहा है। इसके आध्यात्मिक कृतित्व के विषय में निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि यद्यपि सैन्धव– सभ्यता ने अपने उत्तराधिकारियों को अध्यात्म विद्या की अक्षय थाती सौंपी परन्तु उसका वह भौतिक कलेवर, जिसके अवषेषों में वह इस समय विद्यमान है, आर्यो के आक्रमण को बिल्कुल न सह सका।[8] प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण तत्व सिन्धु–सभ्यता से लिए गये, जिसमें वृषभादि अनेक पशुओं का देवों के साथ सम्बन्ध, लिङ्.ग पूजा, मूर्ति पूजा, और आसनो एवं मुद्राओं से संकेतित योगाभ्यास आदि प्रमुख कहे जा सकते है।[9] योगविद्या की प्राचीनता का यह संकेत बौद्ध धर्म के अभ्युदय, जो सिन्धु सभ्यता के समय यति, मुनि या श्रमण के रूप में वर्तमान था, की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस प्रकार अनेक आध्यात्मिक तत्व सिन्धु सभ्यता से उत्तर कालीन सभ्यता में अंगीकृत हुए तथा तत्कालीन जन मानस पर इसका पूर्ण प्रभाव पड़ा। सिन्धु सभ्यता के आध्यात्मिक जीवन के कुछ तत्वों को आत्मसात कर भारतीय चिंतन परम्परा का प्रारम्भ नये कलेवर के रूप में एक प्रारम्भिक विकास वेदों के रूप में होता है। अब वैदिक मनीषि को अपने प्रारम्भिक भौतिक उपकरणों के प्रति निरपेक्ष भाव के प्रकाषन के साथ

आध्यात्मिक गवेषणा में लीन तथा उसने अनुषीलन और मूल्यांकन में तत्पर पाते है। उन मनीषियों के जीवन के सामने एक सुव्यवस्थित आध्यात्मिक लक्ष्य था जो आत्म तत्व के साक्षात्कार के रूप में पर्यवसित होता था। वेद की अनेक ऋचाएं[10] उन मनिषियों की ऐसी सजीव पिपासा पर भूत प्रकाष डालती है।

उत्तर वैदिक काल में दूर तक प्रभाव डालने वाले सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन हुए। शतपथ ब्राह्मण से विदित होता है कि अरण्यानी का साम्राज्य दग्ध करते हुए अग्नि वैष्वानर ने प्रसार का पथ प्रदर्षित किया और आर्य ग्राम सदानीरा के पार विदेह तक जा पहुंचे।[11]

वेदों के बाद उपनिषद् युग का प्रादुर्भाव होता है। इस युग की विचार सरणी का अवलोकन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय मनीषियों की आध्यात्मिक पिपासा नव–नव दृष्टिकोणों के साथ अभिजागृत हो उठी थी।[12] सृष्टि–विषयक जिज्ञासा का प्राचीन वैदिक साहित्य में उन्मेष दो दिषाओं में हुआ– जगत के मूल कर्ता के विषय में और जगत के मूल उपादान के विषय में। जगत की निर्मिति अथवा विनाष पहले देवताओं का ही कार्य माना जाता था। पर उपनिषद– युग में इस धारणा की स्पष्टतर उद्भावना हुई कि जगत की सृष्टि के पीछे एक सर्वषक्तिषाली चेतन सत्ता है जिसे पुरुष, आत्मा, ईष्वर अथवा ब्रह्मा की संज्ञा दी गयी।[13] आत्मा के स्वरूप के विषय में वैदिक चिन्तन में एक सुदीर्घ विकास परम्परा देखी जा सकती है। आत्मा को अमर और आनन्दमय समझने पर मरणषील और सुखासक्त मनुष्यों की लौकिक और स्वर्गिक भोग कामना घट गई और उसके स्थान पर आत्मज्ञान की अभिलाषा प्रतिष्ठा पा गई। कारण कि आत्म बोध ही समस्त कामनाओं की आत्यन्तिक निवृति का उपाय है। अपितु एक स्वभावतः विषुद्ध, अमर तथा अषरीरी आत्मा का सत् और असत्, कर्म की अपरिहार्य शक्ति के द्वारा मुक्ति पर्यन्त बार–बार देह धारण का सिद्धान्त है। संसारवाद जीव, कर्म और मुक्ति अथवा निवृति के सिद्धान्तों से पृथक अपनी सत्ता नहीं रखता।[14] उत्तरकाल में भी पुनर्जन्म का युक्तिषः समर्थन नितान्त गौण रहा। योग विद्या में अभिज्ञ श्रमणों के बढ़ते जीवन्त प्रभाव ने ही संसारवाद की वैदिक परम्परा में पुनर्जन्म को अनुप्रविष्ट और आम जनता में प्रचलित कराया। उपनिषदों के अन्तर्गत वे समस्त तत्व संकलित हो उठे थे जो एकमात्र परमतत्व की स्थापना के उपादान रूप थे। यहाँ ऋषियों के समक्ष सरल से सरल बोधगय प्रणाली से आध्यात्मिक निधियों का उत्तानीकरण ही इष्ट था। विषय–प्रज्ञापन क्रम में सरस कथाओं, प्रष्न–विसर्जन तथा आख्यायिकाओं का समावेष कर निगूढ़तम रहस्यों के उदघाटन–विषयक प्रयत्न सजीव थे। प्रजापति– इन्द्र– विरोचन सम्वाद युग की इस प्रवृति के परिचायक के रूप में देखा जा सकता है।[15] इसी बीच सांख्य विचार धारा का उदय होता है। सांख्य दर्षन स्वयं अपना मूल अनादि श्रुति में नहीं किन्तु कपिल मुन के उपदेष में मानता है। सांख्य दर्षन की निरीष्ववादिता तथा निवृत्तिपरायणता से इस संकेत का समर्थन होता है और इसके मूल श्रमण विचार धारा में खोजना युक्ति संगत प्रतीत होता है, न कि वैदिक विचार धारा में। यहाँ यह निःसन्देह है कि उपनिषदों के सांख्य–संदर्भ वैदिक क्षेत्र में श्रमण प्रभाव को विषद करते हैं। मुण्डकोपनिषद का

नामकरण श्रमण–परम्परा के अधार पर हुआ है। मुण्डक का साधारण अर्थ श्रमण ही होता है। गुरू–षिष्य–परम्परा में संरक्षित, एक व्यवस्थित आध्यात्मिक विज्ञान के रूप में योगविद्या सांख्यादि श्रमण सम्प्रदायों में उदभूत और परिपुष्ट हुई।[16]

आध्यात्मिक गवेषणा का तृतीय चरण विभिन्न दार्षनिक प्रणालियों के प्रादुर्भाव में अभिदर्षित है। इस क्रम में अब विभिन्न दृष्टिकोणों का परिजनन हो चुका था, जिनके परिपोषण स्वरूप कई दार्षनिक विचार सरणियों को सुव्यवस्थित रूप सम्मुख था। यद्यपि सभी परम्पराओं में एकमात्र लक्ष्य परम सुख का अधिगम था। प्रत्येक दर्षन के समक्ष अपनी सुविनिष्चित मान्यताएँ तथा सबल तर्कों से प्रतिपादित पथ था। ऐसे ही चिन्तन–पथ पर अपूर्व पाण्डित्य के साथ चल रहे कपिल, कणाद, व्यास, गौतम, जैमिनी, पतंजलि तथा श्रमण–परम्परा में पकुधकच्चायन, संजय वेलट्ठिपुत्त, निगण्ठनाथपुत्त, मक्खलि गोसाल, पूरण कस्सय आदि का नाम लिया जा सकता है।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व का समय इस चिन्तन क्रम के एक नवीन मोड़ के रूप में अभिलक्षित है। अनेक महापुरूषों और मनीषियों के चिन्तनों और उपदेषों के साथ ही इस युग में महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते है। इस युग के पूर्व तक विचारों की प्रौढ़ता एवं चिन्तन की प्रवाहमयता जो प्रगती हो चुकी थी उनमें नई–नई विचार अर्मियों का समावेष हो चला था। इन नव–विचार–तरंगों के प्रवर्तक एवं सम्पोषक मनीषी के रूप में हमारे समक्ष एक ऐसे व्यक्तिव का दर्षन होता है, जिसमें मानवमात्र के मानस क्षितिज पर एक ऐसी ज्ञान–रष्मि की उद्भावना की, जिससे प्राणि मात्र का चिर चिन्तित आध्यात्मिक लक्ष्य सुगम एवं प्रभास्वर प्रतीत हो उठा। वे अपूर्व व्यक्ति थे– भगवान बुद्ध।

(क) भगवान बुद्ध का प्रादुर्भाव

भगवान बुद्ध की जीवनी के सम्बन्ध में अगर वैज्ञानिक और प्रामाणिक अध्ययन करने को सोचा जाये तो यह कहना होगा कि अन्य मनीषियों की भांति भगवान बुद्ध के भी पक्ष में यह सत्य घटित देखा जाता है। कि अन्तः साक्ष्यों में कोई सुविस्तृत जीवनी नहीं है। भगवान बुद्ध अपने जीवन काल में महापुरूष और तीर्थंकर माने जाते थे, न कि एक अलौकिक अवतार, जैसा कि बाद में महायान सम्प्रदाय के बौद्धों ने समझाा, जिसका पुट आज भी बौद्ध देषों में मिलता है। भगवान बुद्ध के षिष्यों ने उनके उपदेषों का संग्रह ध्यान से किया तथा उनके जीवन सम्बन्धी वृतान्त को उतना महत्वपूर्ण नहीं समझा। बाद के अनुयायिओं ने उनकी जीवनी को अपनी श्रद्धा और सिद्धान्तों के अनुरूप कल्पना से मंडित किया। परिणाम स्वरूप बुद्ध के जीवन के विषय में प्राचीन और ऐतिहासिक सामग्री अत्यन्त विरल है।

पालि त्रिपिटक मे बुद्ध की जीवनी नहीं उपलब्ध कहीं है। मज्झिम निकाय के चार सुत्तों में उनकी पर्येसंषणा का वर्णन है एवं बोधि का वर्णन महावग्ग में उपलब्ध है। महापरिनिब्बान सुत्त में निर्वाण और उसके कुछ पहले के समय का वर्णन है। कालान्तर में बुद्धवंस, निदान कथा प्रभृति ग्रन्थों में इसका कुछ

विवरण विषेष रूप से प्राप्त है। ये जीवनियां उत्तर कालीन और श्रद्धा प्रधान है। बहुत से तथ्य केवल परम्परा में ही विद्यमान हैं। इन सभी उपकरणों की पृष्ठभूमि में ही भगवान बुद्ध की चर्याओं से अवगत होते हैं। लोकोत्तरवादी विनय के अन्तर्गत महावस्तु में बुद्ध सम्बन्धी कथाएँ मिलती है। ललित विस्तर में बुद्ध की जीवनी दी गयी है। तिब्बती परम्परा के बुद्ध की जीवनी से सम्बन्ध रखने वाले कुछ अंष का रॉकहिल ने अंग्रेजी में अनुवाद किया है। अष्वघोष के बुद्धचरित में बुद्ध, की जीवनी काव्य के रूप में प्रस्तुत है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने बुद्धचर्या में पालि त्रिपिटक एवं अट्ठकथाओं में आये प्रसंगों को एकत्र कर बुद्ध की जीवनी प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है। बाबा साहव भीमराव अम्बेडकर ने 'भगवान बुद्ध और उनका धर्म में' भगवान बुद्ध की जीवनी यत्र–तत्र बिखरे श्रद्धान्वय विष्लेषणों को पृथक कर पूर्ण मानवीय चित्रण में प्रस्तुत की है अंग्रेजी काव्य ग्रन्थ 'लाईट ऑव एषिया' में बुद्ध की जीवनी पालि और महायान आगमों के आधार पर अंकित है। जो भी हो महाभिन्ष्क्रिमण के पूर्व की बुद्ध जीवनी त्रिपिटक में कहीं भी संतोषजनक रूप में उपलब्ध नहीं है। यही कारण है कि बुद्ध की परिवारिक जीवन एवं नामादि के विषय में ये परवर्ती विवरण एकमत नहीं हैं।

(i) प्रारम्भिक जीवन महाभिनिष्क्रमण तक

भगवान बुद्ध का जन्म ई. पू. 563[17] में शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु[18] के निकट लुम्बनी वन[19] में हुआ था। यह स्थान वर्तमान नेपाल राज्य के अन्तर्गत भारत की सीमा से आजकल 5 मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ 1895 में अषोक का एक अभिलेख युक्त स्तम्भ मिला है जिस पर ''हिद बुधेजाते ति'' खुदा है। भगवान बुद्ध शाक्य वंस की विसुद्ध जाति के क्षत्रिय थे।[20] महवग्ग से ज्ञात होता है कि बुद्ध के पिता का नाम सुद्धोदन था।[21] इनकी माता का नाम महामाया या मायादेवी बातलाया गया है।[22] पुत्र प्रसव के एक सप्ताह बाद ही महामाया ने लोकलीला समाप्त की तथा पुत्र के भरण–पोषण का भार महाप्रजापति गौतमी[23] (महामायाकी छोटी बहन) के उपर छोड़ दिया गया। उपलब्ध प्रकरणों से विदित होता है कि जन्म के समय वह बालक परम शुद्ध रूप में प्रकट हुआ। यद्यपि बालक का शरीर स्वभावतः परिषुद्ध था तथापि उन्हें दिव्यसम्मान प्रदर्षनार्थ दो शीत एव उष्ण उदक धाराओं ने स्वयं वहिर्गत हो उनके शरीर का प्रक्षालन किया।[24]

पुत्तोत्पत्ति की सूचना पर राजा ने अति आदर के साथ लुम्बनी से ला उसे अपने राजभवन में सुषोभित कराया। परम्परानुसार लक्षण शास्त्री ब्रह्मणों को आमंत्रित कर बालक के गुण–दोष विषयक प्रष्न पूछे गये। कहा जाता है कि ब्राह्मणों ने उस बालक के दिव्य शरीर का अवलोकन कर उसमें विद्यमान महापुरूष के बत्तीस लक्षणों को देखकर उसका नाम सिद्धार्थ रखा तथा उनकी परीक्षा कर ऐसा आर्षवचन कहा– इन लक्षणों से सम्पन्न पुरूष की दो ही गतियां होती है। वह गृह में वास करता है तो चक्रर्तीराजा होता है तथा यदि वह गृह का त्याग कर प्रव्रजित होता है तो वह समस्त आवरणों से मुक्त ''बुद्ध'' होता

है।[25] इस बालक की दो गतियों का विवरण प्रस्तुत करने वाले ब्राह्मणों का संकेत भविष्य में इसके बुद्ध होने की ओर ही था।

बुद्ध के जन्मकालीन आश्चर्याद्भुत धर्मों की कथाओं को प्राचीन नहीं माना जा सकता और न असित की भविष्यवाणी को ही ऐतिहासिक माना जा सकता है।[26] बुद्ध का दाम्पत्य जीवन और परिवारिक सम्बन्धों के विषय में भी कोई प्रामाणिक प्राचीन सामग्री उपलब्ध नहीं होती। राहुल नाम के भिक्षु का निकायों में एकाधिक स्थान पर उल्लेख मिलता है, किन्तु बुद्ध के पुत्र के रूप में नहीं। एक स्थान पर महावग्ग में राहुल कुमार को उनका पुत्र कहा गया है। और वहीं राहुल माता का भी उल्लेख है।[27]

(ii) महाभिनिष्क्रमण

उन्तीस वर्ष की अवस्था में बुद्ध ने घर–वार छोड़कर महाभिनिष्क्रमण किया।[28] अनेक पूर्व जन्मों में अर्जित पुण्य से अभिसंस्कृत बोधिसत्व के चित्त में जरा मृत्यु और व्याधि पर चिन्तन करने से जीवन की अनित्यता और निःसारता प्रकट हो गई तथा तीव्र वैराग्य की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने महाभिनिष्क्रमण किया। कहा जाता है कि सांध्य विहार के लिए उद्यान जाते हुए राजकुमार ने क्रमषः जरा जीर्ण, व्याधि सम्पन्न एवं मृतक को देख संसार से निवेर्द प्राप्त किया तथ चतुर्थ दिवस एक प्रव्रजित को देख उसके ही मार्ग को विमुक्ति का मार्ग जान अपार भौतिक वैभव का परित्याग कर रात्रि की शून्य बेला में अमृत की खोज के लिए महाभिनिष्क्रमण किया। उनके संसार त्याग के लिए उत्प्रेरक विचारों को इस प्रचलित कथा में एक नाटकीय घटना का रूप दिया हुआ प्रतीत होता है। वे रातोरात अनोमा नदी पार कर सत्य की गवेषणा में विभिन्न तत्वदर्षियों के निकट विचरने लगे। कहा जाता है कि इस क्रम में उन्होंने आलारकालाम तथा उदकरामपुत्त नामक दो आचार्यो का साक्षात्कर किया। पर वे सन्तुष्ट नहीं हो सके। परम्परानुसार तपष्चर्या को विमुक्ति का मार्ग जान उन्होंने अल्पाहार, निराहार आदि क्रमों से अपने को तपाना शुरू किया। उनके ये दुष्कर कृत्य छः वर्षों तक चलते रहे इन तपष्चर्याओं से बोधिसत्व को शरीर अत्यन्त कृष तथा क्षीण हो गया और उनकी स्वाभाविक अवदात छवि काली पड़ गयी। इस स्थिति में उन्हें दुष्कर तथ तपष्चर्या की व्यर्थता स्पष्ट दिखने लगी।

(iii) बोधि लाभ

सम्य की गवेषणा में लीन बोधिसत्व को छः वर्षों की अनवरत दुष्कर तपष्चर्या से कुछ भी लाभ नहीं हो सका। जिस लक्ष्य के अधिगम के लिए उन्होंने गृहत्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की थी वह अभी भी उनसे दूर ही रहा। अतः तपष्चर्या[29] को निःसार समझ सेनानी ग्राम की पुण्यधर्मा कन्या सुजाता की दी हुई पायस को ग्रहण कर निरंजना नदी के तट पर बैठ उन्होंने भोजन किया। कहा जात है कि उस पायस भोजन के अनन्तर ही उनका शरीर ओज सम्पन्न हो उठा। बोधिसत्व के समक्ष जरा मरण से रहित अमृत पद की प्राप्ति हो लक्ष्य था। वैषाख पूर्णिया का दिन था। इसलिए उनके कदम बरवस ही उरूबेला की ओर चल

पड़े। उन्होने आगे चलकर देखा कि यह बहुत ही रमरणीय भू–भाग है तथा सुन्दर वन खण्ड से सुविलसित है, निरंजना नदी के तट पर स्थित बोधिवृक्ष के नीचे अभेद्य आसन लगा इस प्रकार दृढ़ संकल्प कर ध्यान मग्न हो गये ''कामं तचा च नहरू च अट्ठि च अवसुस्सतु सरीरे मंसलाहितं, न त्वेव सम्मासम्बोधिं अप्पत्वा इमं पल्लड़्कं भिन्दिस्सामी'ति''[30]।

इस प्रकार शनैः शनैः उनके ध्यान का उत्थान प्रथम ध्यान (सवितर्क – सविचार – विवेकज – प्रीतिसुख) से द्वितीय ध्यान (अवितर्क – अविचार – समाधिज – प्रीतिसुख), पुनः द्वितीस से तृतीय (उपेक्षक – स्मृतिमान – सुखविहारी) और फिर तृतीय से चतुर्थ ध्यान (अदुक्ख सुख – उपेक्षा – स्मृति – परिषुद्धि) पर चित्त एकाग्र होता गया। इसी चतुर्थ ध्यान में ही अलौकिक शांति पद गवेषी बोधिसत्त्व ने अपने विशुद्ध और निष्चल चित्त के द्वारा रात्रि के तीन यामों में तीन विद्याएँ प्राप्त कर सम्यक सम्बोधि का अधिगम किया। रात्रि के प्रथम प्रहर में अपने पूर्व के अनेक जन्मों को पूर्ण विवरण के साथ जान लिया। यह उनकी प्रथम प्रहर की प्रथम विद्या समझी जाती है। रात्रि के मध्यम यम में उन्हें सत्वों के च्युति एवं उत्पत्ति विषयक ज्ञान हुआ। इससे उन्होंने अपने परिषुद्ध दिव्य चक्षु के सहारे समस्त जीवों को उत्पन्न होते तथा मृत्यु को प्राप्त कर हीन एवं प्रणीत योनियों में जन्म ग्रहण करते स्पष्टतः देखा। उनकी यह उपलब्धि मध्यम याम की द्वितीय विद्या कही जाती है। रात्रि के अंतिम याग में जिस ज्ञान की उपलब्धि हुई उसे ''आसव–क्षय ज्ञान कहा जाता है। इसके सहारे उन्होंने चार आर्य सत्यों के सम्यक् प्रतिवेध के साथ, काम – आसव, भव – आसव, दृष्टि–आसव, तथा अविधा–आसव के पूर्णतः निरूद्ध हो जाने की बात भी जान ली। उनका चित्त सभी प्रकार के आसवों से विमुक्त हो गया, ऐसा उन्हें ज्ञान हुआ। उन्होंने यह भी जाना कि उनके जीने मरने की परम्परा समाप्त हो गई, ब्रह्मचर्यवास का सफल र्प्यवसान हुआ, करणीय समस्त कार्य कर लिए गये, अब पुनः यहाँ जन्म लेकर आने की बात नहीं रह गई।[31] उनकी यह उपलब्धि अंतिम प्रहर की तृतीय विद्या की प्राप्ति से अभिलक्षित की जाती है। यही बोधिसत्व की सम्बोधि की प्राप्ति है, जिसे प्राप्त कर वे बुद्ध कहलाए तथा वह अष्वथ वृक्ष जिसके नीचे बुद्धत्व का लाभ हुआ, वह भी इसी कारणवष बोधिवृक्ष के नाम से अभिहित हुआ।

भगवान बुद्ध बोधिलाभ के पष्चात एक सप्ताह बोधिवृक्ष के नीचे एक आसन पर बैठे वे विमुक्ति सुख का अनुभवव करते हुए वीताया। सप्ताह की परिसमाप्ति की अंतिम रात्रि में उस समाधि से उठकर उसके तीन प्रहरों में उन्होंने प्रतीत्य–समुत्पाद पर अनुलोम–प्रतिलोम नय से मनन करते हुए अपने प्रतिवचन व्यक्त किये। रात्रि के तीन प्रहरों में जिस प्रतीत्य समुत्पाद पर तथागत ने मनन किया वह बौद्ध दर्षन का आधार भूत सिद्धान्त है। इस सिद्धांत के अनुसार उन्होंने इस तथ्य की स्थापना की कि इस संसार के सभी पदार्थ कारण समुन्नत है– ''इति इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति।'' कोई भी धर्म अपने में

स्वतंत्र नहीं है वरना सभी एक दूसरे पर आश्रित हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार भवचक्र द्वारा अविद्या का मूलरूप से कथन किया गया है।

भगवान बुद्ध को ऐसा प्रतीत हुआ कि यह गंभीर धर्म जनवर्ग में बोधगम्य नहीं होगा। फलतः धर्मोपदेष के लिए भी उनके मन में तत्परता, पूर्ण रूचि तथा उत्सुकता न उठती हुई दिख पड़ी। उनकी यह मनोदषा इस कथन से सम्पुष्ट होती है– '' मैने गंभीर दुर्दषनीय, दुर्ज्ञेय, शान्त, उत्तम, तर्क से अप्राधय, निपुण तथा पंडितों द्वारा जानने योग्य, इस धर्म को पालि लिया..... जनता के लिए यह दुदर्षनीय है।[32] तथागत का यह निष्चय उनके व्यक्तिगत सुखानुभूति के दृष्टिकोण से भले ही हितकर हो सकता था पर जन कल्याण की दृष्टि से वज्रपात सद्दष था। बुद्ध के ऐसे निष्चय से सहम्पति ब्रह्मा का हृदय प्रकम्पित हो उठता है। उनकी दृष्टि में ताप की गुरूता लोक को भस्मीभूत करने के निमित्त अपने अंतिम रूप में स्थित थी, जिनका निवारण बुद्ध के सिवा किसी अन्य से आसम्भव था। तत्पष्चात उन्होंने कातर हृदय से भगवान के समीप उपस्थित हो धर्मोपदेष की याचना की। उन्होंने स्पष्टतः कहा–'' पवर्त षिखर पर स्थित हो जिस प्रकार समस्त जनता को देखा जा सकता है, उसी प्रकार भगवान धर्ममय प्रासाद पर चढ़कर शोकावतीर्ण, जाति जराभिभूत जनता को देखे।[33] भगवान बुद्ध ने प्राणिमात्र पर करूणावृष्टि करते हुए बुद्धचक्षु से लोक को देखा और उन्हें वैसा ही पाय भव के उपकरणभूत पञ्चकामगुण–समर्पिता प्रजा में भी आध्यात्मिक उन्मुखता की स्पष्ट रेखा भी दर्षनीय थी।[34] वस्तु स्थिति ने तथागत के हृदय को धर्मोपदेष की प्रवल भावना से परिपूर्ण कर दिया। यहाँ एक बात आलोचना की हष्टि से विचित्र सी लगती है कि अपार करूणा की मूर्ति तथागत में स्वयं धर्म देसना प्रति अभिरूचि क्यों न हुई? इस प्रष्न के समाधान स्वरूप कई कारण प्रस्तुत किये जा सकते हैं– असंख्य वस्तुओं की उपस्थिति में किसी एक के सम्बन्ध में विचार करना तो निष्चय ही असम्भव है। अतः वे सर्वज्ञान सामर्थ्य सम्पन्न रहते हैं। जब उसे जानने की आवष्यकता होती है उसे तत्क्षण आवर्जित कर जान लेते हैं।[35] बुद्ध के मन में कोई वास्तविक विचिकित्सा अथवा संकोच नहीं था। किन्तु उनके मन का वितर्क ब्रह्मा को प्रेरित करने के लिए था क्योंकि बुद्ध विना अर्ध्यषणा के उपदेष नहीं देते। सहम्पति ब्रह्मा का अभ्युदय नाटकीय ढंग से जनवर्ग की उत्कृष्ट अभिलाषा की अभिव्यक्ति कही जा सकती है। डा. नलिनाक्ष दत्त महोदय ने उक्त प्रष्न के समाधान स्वरूप ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि बुद्ध की अनभिरूचि केवल तत्त्व के दिग्दर्षन के प्रति ही थी।[36] उन्होंने जिस तथ्य का साक्षात्कार किया था वह सभी शब्दगत व्याकरणों से परे अलौकिक था। अलौकिक तथ्य की अभिव्यक्ति लौकिक एवं सीमा प्रतिबद्ध शब्दों से कहाँ हो सकती है? इसलिए उन्होंने उस परम तत्व की देषना के प्रति अनभिरूचि तथा मार्ग उपदेष के प्रति रूचि दर्षायी। यह व्यख्या अन्यान्य प्रसंगों से भी परिपुष्ट होती देखी जाती है, जब उनके स्पष्ट वचन, मार्ग का अनुसरण कर निर्वाण की उपलब्धि करने के लिए तथा अव्याकत प्रष्नों में न उलझने के लिए प्राप्त होते हैं।[37] जो हो ब्रह्मयाचन कथा की धार्मिकता की स्वीकृति वैसे महान व्यक्ति के आदर्ष के अनुकूल ही

कहीं जा सकती है। अज्ञानियों के उद्धार के लिए ज्ञानी द्वारा गुरूपद की स्वीकृति आवष्यक कर्तव्यों में से एक है। यदि ऐसा नहीं होता तो संसार में अलौकिक ज्ञान की परम्परा कभी बन ही नहीं पाती।

(iv) धर्मचक्र–प्रवर्तन

ब्रह्मयाचन की स्वीकृति के साथ ही भगवान बुद्ध के हृदय ने धर्म ग्रहण करने के उपयुक्त पात्र की गवेषणा में पहली देषना के युक्ततम पात्र के रूप में आलार कलाम और उदकराम पुत्त को उपयुक्त अधिकारी माना, किन्तु उनका देहान्त कुछ समय पूर्व ही हो गया था। उनके वाद उपादेयता की दूसरी कोटि में बुद्ध ने पञ्चवगीय भिक्षुओं को रखा जो उन्हें छोड़कर चले गये थें। इन भिक्षुओं से मिलने बुद्ध वाराणसी गये और वहाँ ऋषिपत्तन मृगदाय में उन्होंने पहला धर्मोपदेष कर धर्मचक्रप्रवर्तन किया। धर्मचक्रप्रवर्तन की चर्चा के साथ यहाँ एक निष्चित उपदेष क्रम का विवरण उपलब्ध होता हैं। उन्होंने अपने मूलभूत दृष्टिकोण मध्यम मार्ग का यहाँ ही सर्वप्रथम उद्‌घाटन किया जो ‘कामेसु – कामसुक्खल्लिकानुयोग’ आर्थात् इन्द्रिय जनितसुख – परिव्याप्त जीवन– यापन प्रक्रिया तथा ‘अत्तकिलमथानुयोग’ अर्थात् विविध प्रपीड़नपरिव्याप्तजीवन क्रम नामक दो अन्तों से वर्जित था।[38] बुद्ध ने इन दो अन्तों को कई दृष्टियों से हेय बताया है उनकी दृष्टि से इनका परित्याग ही प्राणिमात्र के लिए उपादेय था।[39] इस क्रम में उन्होंने आठ अंगों तथा चार आर्य सत्यों पर भी प्रकाष डाला।[40] इस प्रकार मझिमा पटिपदा के उद्‌घाटन से लेकर चार आर्य सत्यों की विविध परियों से स्थापना तक की बातें धर्मचक्रप्रवर्तन सुत्त के नाम से अभिहित होती हैं। विनय पिटक के महावग्ग तथा संयुक्त निकाय के एतद्‌विषयक विवरण में साम्य है। त्रिपिटक में सर्वत्र उनके प्रथम उपदेष को सुनने वाले पञ्चवर्गीय भिक्षु ही देखे जाते हैं, पर उनके दिये जाने के क्रम में कुछ विभेद है। महावग्ग के अनुसार भगवान ने धर्मचक्रप्रवर्तन के समय पाँचों भिक्षुओं को उपदेष दिया है, जिसके श्रवणमात्र से सर्वप्रथम कोण्डञ्ञ को दिव्य दृष्टि हुई। पुनः वप्प तथा भद्दिय को क्रमषः धर्मचक्षु उत्पन हुआ एवं अन्त में महानाम तथा अस्सजी के ज्ञान लाभ की कथा है। परन्तु मज्झिम निकाय के पासरासि सुत्त तथा बोधि राजकुमार सुत्त के अनुसार पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को पृथक–पृथक धर्म देषना का प्रसंग है। कुछ भी हो यह वर्णन–क्रम की व्यवस्था है। यह सच है कि बुद्ध की देषना से पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने अर्हत्व प्राप्त किया और इस प्रकार लोक में छः अर्हत हुए। वाराणसी में यष नाम के श्रेष्ठिपुत्र की प्रव्रज्या का भी उल्लेख महावग्ग में प्राप्त होता है इसके पष्चात यष के सम्बन्धियों और मित्रों ने नये धर्म को स्वीकार किया और वाराणसी में अनेक बौद्ध उपासक और भिक्षु बन गये। इस प्रकार बुद्ध के अतिरिक्त साठ और अर्हत उस समय थें। इनको बुद्ध ने नाना दिषाओं में धर्म प्रचार के लिए भेज दिया और स्वयं उरूवेला की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में उन्होने तीस भद्रवर्गीय कुमारों को धर्म देषना दी। उरूवेला में उन्होने तीन जटिल कष्यप बन्धुओं को उनके एक हजार अनुयायिओं को प्रतिहार्य तथा देषना के द्वारा सद्धर्म में प्रवेषित किया। इसके अनन्तर बुद्ध राजगृह गये और वहाँ राजा बिम्बिसार को धर्म का उपदेष दिया। बिम्बिसार ने भिक्षु संघ को

वेणुवन उद्यान का उपहार दिया। राजगृह में संजय नाम के परिव्राजक आचार्य के दो षिष्य सारिपुत्त और मोदग्गल्यायन अष्वजित के– ''ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह, तेसं च यो निरोधो एवं वादी महासमणों''[41] की व्याख्या से बुद्ध के प्रति श्रद्धावान हुए। दोनो ने बुद्ध का षिष्यत्व स्वीकार किया। महावग्ग में सम्बोधि के बाद की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण यहाँ पर समाप्त हो जाता है।

(v) बुद्ध की चारिका

थेर और थेरियों को जानने परखने के लिए बुद्ध की चारिक को भी समझना आवष्यक है। अपनी चारिकाओं के क्रम में ही बुद्ध ने विभिन्न थेर और थेरियों को बौद्ध संघ में दीक्षित किया। चारिका शब्द की उत्पति चर धातु से हुई है, जिसका अर्थ विचरण करना होता है। यह शब्द अपने व्युत्पत्तिपरक अर्थ के साथ–साथ प्राविधिक अर्थ के रूप में भी प्रतिष्ठित है। भगवान बुद्ध का विचरण विषिष्ट प्रकार का होता था। चारिका का अभिधान करते हुए भगवान ने बहुजन हिताय बहुजन सुखाय[42] आदि शब्दों की अभिव्यक्ति कर ऐसे विचरण का व्यापक उपदेष पर प्रकाष डाला है। अतः प्राणिमात्र के हित और सुख की भावना से प्रेरित होकर तदर्थ मार्ग के निर्देषन के लिए तथा तद्‌वाधक अंगो के निवारण के लिए जो यात्रा की जाती थी, उसे ही 'चारिका' कहा जा सकता है।

बुद्ध की चरिया से ऐसा प्रकट होता है कि उन्होंने कभी भी यह नहीं चाहा कि लोग उनके निकट धर्मोपदेष के लिए आवें। इसके विपरीत उन्होंने सुदूर गांवो और निगमो में वास करने वाले श्रद्धालु व्यक्तियों के निकट जा उनके दुख के निवारणार्थ उपदेष दिया। बोधिलाभ के पष्चात उन्होने पैतालीस वर्षो तक अपना जीवन चारिका में बिताया। अम्बट्ठ सुत्त की अट्ठकथा से प्रकट होता है कि भगवान की चारिका दो प्रकार की होती थी– 1. तुरितचारिका 2. अतुरित चारिका। भगवान प्राणियों की चित्तदषा को स्वयं जान जाते थे। कभी सुदूर स्थित प्राणियों की चित्तदषा को जान वे तत्क्षण चारिका प्रारम्भ कर देते थे। ऐसी चारिका तीव्र जाति से होती भी। एक क्षण में कई योजनों की यात्रा समाप्त हो जाती थी। बुद्ध की ऐसी चारिका तुरितचारिका कही जाती थी। महाकाष्यप के स्वागतार्थ भगवान ने एक क्षण में एक योजन के तीन चौथायी भाग की यात्र पूरी की। आलवक यक्ष एवं अंगुलिमाल के लिए उनकी यात्रा एक एक क्षण में तीस–तीस योजन तक हुई। पकुसादिक तथा महकप्पिन के उपदेषार्थ उन्होंने क्रमषः तैतालीस तथा एक सौ योजन की यात्रा एक–एक क्षण में समाप्त की। इस प्रकार अत्यल्प समय में एक सुदीर्घ पथ की यात्रा समाप्त करने का क्रम भगवान की तुरित चारिका के अन्तर्गत देखा जाता है।[43] अतुरित चारिका का अभिप्राय है कि वे प्रतिदिन एक योजन या आधे योजन तक चलते हुए मार्ग स्थित ग्राम एवं नगरों में विकीर्ण जनवर्ग को सत्य–पथ पर लाने में सहायक उपदेषों से उन्हें तृप्त करते थे। उनकी इस अतुरित–गति में लोक कल्याण एवं आध्यात्मिक उत्थान की भावना प्रतिक्षण प्रस्फुटित होती थी। उनका यह सामान्य यात्रा–क्रम ही अतुरित चारिका के नाम से प्रसिद्ध है।[44]

(vi) मण्डलगत चारिका भेद

अट्ठकथा से पता चलता है कि बुद्ध की चारिका का मण्डलगत नामक एक अन्य भेद भी था। कहा जाता है कि भगवान आवष्यकतानुसार महामण्डल, मध्यमण्डल, अन्तर्मण्डल नामक तीन क्षेत्रों में भ्रमण किया करते थे। ये तीन मण्डल क्रमषः नौ सौ योजन, छः सौ योजन तथा तीन सौ योजन कहे गये है।[45] महामण्डल की चारिका नव मासों में समाप्त होती थी। वर्षावास की परिसमाप्ति पर आष्विन पूर्णिमा के दिन महापवारणा सम्पन्न कर दूसरे दिन भगवान भिक्षुओं के सहित चारिका के लिए प्रस्थान करते थे। इस क्रम में अपार जन समुदाय को धर्म देषना करते हुए मण्डलाकार यात्रा सम्पन्न करते थे। निष्चित अवधि में वर्षावास के सम्पन्न होने पर ही भगवान महामण्डल की चारिका किया करते थे। पुनः नव मास के अन्त में इसे पूरा कर किसी स्थान में वर्षावास किया करते थे। महामण्डल चारिका का तात्पर्य भगवान कभी कभी एक मास अधिक वर्षावास स्थान में रह जाते थे। पुनः कार्तिक पूर्णिमा को पवारणा कर मार्गषीर्ष के प्रथम दिन महाभिक्षुसंघ से परिवृत हो चारिका के लिए मध्यम मण्डल में प्रविष्ट होते थे। इस क्षेत्र की यात्रा आठ महीनों में समाप्त होती थी। पुनः यात्रा के अवसान मे भगवान वर्षावास के लिए की तीन मास ठहर जाते थे। चारिका के इस क्रम का नाम मध्यम मण्डल चारिका है। बुद्ध के तीसरे चारिका क्रम को अन्तिम मण्डल चारिका कहा जाता है। इसकी चारिका सात महीनों में सम्पन्न होती थी। कभी–कभी वर्षावास करते हुए चार महीनों के समाप्त हो जाने पर भी भिक्षुओं की इन्द्रियां अपरिपक्व रह जाती थी। भगवान ऐसे विनय जनों की साधना को देख मार्गषीर्ष की पूर्णिमा के दिन पवारणा कर पौष मास के प्रथम दिन भिक्षुसंघ से परिवृत होकर चारिका के लिए अन्तिम मण्डल में प्रविष्ट होते थे। पुनः सात महीनो तक ग्राम निगमों में विचरण करते हुए अपार जनसमुदाय को धर्मामृत से संतृप्त करते हुए आठवें महीने के प्रारम्भ में पुनः वर्षावास करना प्रारम्भ करते थे। चारिका के ये तीन क्रम परिस्थिति के अनुकूल भगवान की इच्छा पर निर्भर थे।

(vii) महापरिनिर्वाण

भगवान बुद्ध की अंतिम यात्रा का विवरण महापरिनिबान सुत्त में प्राप्त होता है। इस सुत्त में भगवान बुद्ध ने महापरिनिब्बान में प्रविष्ट होने की दृष्टि से ही राजगृह से कुषीनगर के लिए प्रस्थान किया था।[40] भगवान बुद्ध की यह अन्तिम यात्रा–क्रम भी उनके द्वारा दिये गये अन्तिम एवं गम्भीर उपदेषों से परिपूर्ण है। घटनाक्रम के प्रवाह का प्रारम्भ मगध के महामंत्री वर्षकार के वज्जियों को पराजित करने सम्बन्धी प्रष्नों की चर्चा से होता है। इस क्रम में बुद्ध ने वज्जियों में व्याप्त सात अपरिहानीय धर्मो की चर्चा कर उनका पालन करने के कारण ही उन्हें अजेय बतलाया। तदनन्तर नालन्दा के पावारिक आम्रवन होते हुए वे पाटलिग्राम पहुंचे। उस समय मगध की राजधानी अजातषत्रु द्वारा राजगुह से पाटलिपुत्र ले जायी गयी थी। मगध महामात्य सुनीध एवं वर्षकार द्वारा आमंत्रित हो बुद्ध ने इस नगर का उद्घाटन किया तथा उसके भविष्य का उल्लेख करते हुए अग्नि, जल तथा पारस्परिक कलह से इसी की हानि की सम्भावना व्यक्त की। जिस द्वार

से उन्होंने नगर में प्रवेष किया, वह गौतम द्वार तथा जहाँ से उन्होंने गंगा पार किया, वह गौतमतीर्थ कहलाया। गंगा पार कर बुद्ध कोटि ग्राम, नादिका होते हुए वैषाली पहुंचे।

वैषाली में अम्बवालि गणिका ने उन्हें पूर्वाह्ण–भोजन पर आमंत्रित कर संघ के लिए आम्रवन दान में दे दिया। वैषाली से चलकर भगवान वेळुग्राम पहुंचे। वहाँ वे कटु वेदना, सहित रोगग्रस्त हो गये। भगवान भी अनित्यता के सार्वभौम नियम के अपवाद न थे। उनका शरीर जीर्ण शीर्ण हो चला था। उपनी इस दषा का परिचय, उन्होंने आनन्द से इस प्रकार व्यक्त किया है– ''आनन्द! अभी मैं जीर्ण, वृद्ध, महल्लक, अध्वगत तथा वयप्राप्त हो चुका हूँ। मेरी आयु अस्सी वर्ष की हो चुकी है। जिस प्रकार आनन्द जीर्ण शकट पेवन्द के योग से चलता है, उसी प्रकार तथागत भी अपने भाग्न शरीर को मानो पेवन्द के योग से ही चलाये जा रहे हैं।[47] बुद्ध ने इस तरह जरा का वर्णन करते हुए आनन्द को इस बात पर बल दिया कि भिक्षु स्वयं ही अपना दीपक बनकर विहार करें। अपनी ही शरण में जाये, अन्य किसी के नहीं, साथ ही धर्म को दीपक मानकर धर्म की शरण जायें, अन्यत्र नहीं। इस क्रम में चापाल चेतिय पहुंच कर तथागत ने आयु संस्कार का विसर्जन किया तथा यह घोषणा की कि आज से तीन माह के अनन्तर तथागत महापरिनिर्वाण प्राप्त करेंगे। आगे महावग्न भोगनगर होते हुए पावा पहुंचे, जहाँ उन्होने कम्मारपुत्त चुन्द के घर सूकर मद्दव का भोजन कर रूग्णता प्राप्त की। यही उनका अन्तिम भोजन था। बुद्ध ने दो पिण्डपातों को महत्वपूर्ण बतलाया। प्रथम पिण्डपात जिसे ग्रहण कर तथागत सम्बोधि को प्राप्त करते हैं तथा द्वितीय जिसे ग्रहण कर वे महापरिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं।

पावा से तथागत की यात्रा कुकुट्ठा नदी को पार करती हुई कुषीनगर में जा आम्रवन में स्थगित हो गई। भगवान की आज्ञा से दो शालवृक्षो के मध्य उत्तर की ओर षिर करते हुए शैय्या बिछाई गई। भगवान ने दक्षिण पार्ष्व से लेटते हुए सीहषय्या लगाई। तथागत के इस अंतिम जीवन क्षणों में शालवृक्ष अकालिक फुल–फलों से लद गये तथा उनके शरीर पर स्वतः फूल बरसने लगे। उन्होंने आनन्द को प्रकृति की इन लीलाओं की ओर दिग्दर्षन कराते हुए कहा– जो प्राणी, भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका धर्मानुकूल विहार करते है, वे तथागत की ही पूजा करते हैं। इसलिए धर्मानुकूल विहार करते हैं, वे तथागत की ही पूजा करते हैं। इसलिए धर्मानुकूल विहार करना सबके लिए उचित है। इस प्रकार अन्तिम धर्मोपदेष करते हुए उनकी वाणी फूट पड़ी– ''आनन्द सभी संस्कार नाषवान हैं, अप्रमाद के साथ अपने लक्ष्य का सम्पादन करो।''[48] तथागत समाधि की प्रथम अवस्था से नेवसञ्ञाना सञ्ञाय तन तक पहुंच निरोध समापति में प्रविष्ट हुए। पुनः उन्होने निरोध समापति से उठकर नेववसञ्ञानासञ्ञायतन की अवस्था से प्रथम ध्यान की अवस्था को अवरोह क्रम से प्राप्त किया। तीसरा क्रम प्रथम ध्यान की अवस्था से प्रारम्भ कर चतुर्थ तक पहुंचा, जिसके अनन्तर उन्होंने महापरिनिर्वाण में प्रवेष किया। ''सब्बे सङ्खारा अनिच्चा'' पर मनन करते हुए सहम्पति ब्रह्मा की वाणी वरवस फूट पड़ी–

सब्बेव निक्खिपि सन्ति, भूता लोके समुस्सयं
यत्थ एतादिसो सत्था, लोके अप्पटिपुग्गलो
तथागतो बलपत्तो, सम्बुद्धो परिनिब्बुतो,ति

(ख) त्रिपिटक का अवतरण

उरूवेला की निरंजना नदी के शांत कछार पर स्थित बोधिमण्ड के बोधिवृक्ष के नीचे सम्बोधि प्राप्ति के दिन से लेकर अस्सी वर्ष की अवस्था तक तथागत ने पैंतालीस वर्षो तक जम्बुद्वीप के नाना ग्राम–निगमों में चारिका करते हुए धर्मोपदेष किया। उनके सभी धार्मोपदेष मौखिक थे। भिन्न–भिन्न स्थानों पर दिये गये उपदेष विभिन्न प्रकार के श्रोताओं को दिये गये थे। उनके जीवन पर्यन्त शंका होने भगवान स्वयं उपलब्ध थे। पर तथागत के परिनिर्वाण के अनन्तर भिक्षुओं ने इस दिषा में एक सुदूर रिक्तता का अनुभव किया। तथागत ने उन्हें बल देते हुए कहा था कि– ''मेरे परिनिर्वाण के पष्चात यह न समझना चाहिए कि अब हमारे रास्ता नहीं हैं। मैने जो धर्म और विनय के उपदेष दिये हैं और प्रज्ञाप्त किये हैं, मेरे बाद वही तुम्हारे रास्ता होंगे।[50] पर यह कहना कठिन था कि शास्ता के कौन से वचन धम्म और विनय हैं। इसी बीच सुभद्र के कटुवचन[51] महाकाष्यप द्वारा सुने गये। उनकी मनोव्यथा का परिचय इन वाक्यों से ध्वनित होता है– ''आयुमानों! आज हमारे समक्ष अधर्म की वृद्धि हो रही है, धर्म का ह्रास हो रहा है। अविनय की वृद्धि हो रही है विनय का ह्रास हो रहा है।[52] तदन्तर उन्होंने यह घोषणा की कि हम धर्म और विनय का संगायन करें। इस उद्देष्य से उस वर्ष राजगृह में वर्षावास करने का निष्चय किया गया तथा यह भी विनिष्चित हो गया कि आनन्द सहित पांच सौ अर्हत भिक्षु ही राजगृह में वर्षावास करते हुए धर्म का संगायन करें।

(i) प्रथम बौद्ध संगीति

मगध सम्राट आजतषत्रु के संरक्षण में वैभार पर्वत के सप्तपर्णी गुहा के द्वार पर एक सुरम्य–मण्डप का निर्माण कराया गया। वर्षावास के प्रथम मास में अपने दैनिक जीवन सम्बन्धी कार्यो को सम्पन्न कर द्वितीय मास श्रावण के प्रारम्भ में भिक्षु गणों ने बुद्धवचन के संगायन के निमित्त सभा मण्डप में पदार्पण किया। आनन्द अभी तक अर्हत्वलाभी नहीं हो पाये थे। जबकि भगवान से उन्हें सबसे अधिक बातें सुनने को सौभाग्य प्राप्त था। इसलिए उनका समागम वांछनीय एवं अनिवार्य था। कहा जाता है कि महाकाष्य की प्रेरणा से आनन्द सत्वर अर्हत्व की उपलब्धि कर अपने आसन पर जा बैठे इस प्रकार पांच सौ अर्हतों की उपस्थिति के साथ–साथ आर्य महाकाष्यप की अध्यक्षता में बुद्धवचन–संगाायन का कार्य प्रारम्भ हुआ। महाकाष्यप ने उपालि से विनय विषयक प्रष्न पूछे। प्रष्नों का क्रम वस्तु, निदान, पुदगल, प्रज्ञप्ति, आपत्ति एवं अनापत्ति आदि बातों से परिपूर्ण था।[53] स्थविर उपालि ने धर्मासन से उन प्रष्नों का यथाश्रुत विसर्जन उपस्थित किया। विनय–विषयक समस्त प्रष्नों की परिपृच्छा प्रारम्भ की। उन्होंने आनन्द से एतद् विषयक समस्त प्रष्नों को स्थान, व्यक्ति, निदान आदि बातों के सहित पूछा[54]। आनन्द ने उन प्रष्नों को यथाश्रुत उत्तर

दिया। इस प्रकार इस संगीति में तथागत के समस्त उपदेष अर्थात् धर्म–विनय का संगायन किया गया। परम्परा के अनुसार यह संगीति भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के तीन मास बाद हुई जो सात मास में सम्पन्न हुई। पांच सौ भिक्षुओं के संगायन में सम्मिलित होने के कारण इसे पंचसतिका कहा जाता है। इसलिए इसके– ''अयं विनयसंगीति पंचसतिका ति वुच्चति।''[55] आदि गई नाम हैं। प्रथम संगीति के विषय में कहा जाता है कि बुद्धवचन का संगायन सुत्त और विनय के रूप में हुआ। पर इसके तुरंत बाद उद्दान वक्यों में ही इस प्रकार का विवरण उपलब्ध होता है कि आर्य महाकाष्यप ने उपालि से नियम सम्बन्धी प्रष्न पूछा तथा पण्डित आनन्द से धर्म–सम्बन्धी बातें पूछी। इस प्रकार ''जिन श्रावको'' ने तीन पिटकों का संगायन किया।[56] इस वचन से फलित होता है कि प्रथम संगीति में ही बुद्धवचन का तीन पिटकों में विभाजन एवं संगायन हो चुका था। यहाँ सुत्त और धम्म शब्द पर्यायवाची है तथा धम्म शब्द से सुत्तपिटक एवं अभिधम्मपिटक दोनों अभिप्रेत हैं। समन्तपासादिका, सुमंगलविलासिनी तथा अट्ठसालिनी के अनुसार इस संगीति में न केवल बुद्धवचन का ही संगायन हुआ था।[57] अपितु उनका कई दृष्टिकोणों से विभाजन भी किया गया था।[57] प्रथम संगीति की ऐतिहासिकता और कार्य पर ऐतिहासिकों में प्रचुर विवाद हो चुका है। मिनटोफ, ओल्डेनवर्ग, फ्रान्के, प्रिजलुस्की, दत्त, फ्राउवाल्नर आदि ने समस्त सामग्री का मन्थन कर भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किए हैं।[58] निष्कर्ष के तौर पर इतना तो स्पष्ट है कि इस समय उपलब्ध विनय और सुत्तपिटक अपने वर्तमान वृहद कलेवर में परिनिर्वाण के समनन्तर तत्काल संगृहीत नहीं किये जा सकते थे, किन्तु यह संभव है कि इनके संग्रह का प्रयास तत्काल किया गया हो। यह सर्वथा संभाव्य एवं युक्तियुक्त है। तथागत ने कहा था–''धम्मो यो भिक्खवे ममच्चनयेन सत्था'' एवं आनन्द ने परिनिर्वाण के अनन्तर वर्षकार से यही दुहराया था कि धर्म ही उनका शास्ता है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि तथागत के अनन्तर उनके षिष्यों ने धर्म एवं विनय का संगायन किया हो। समस्त भिक्षु संघ को एक सूत्र में बांधने के लिए एवं उसके दिग्दर्षन के लिए इस प्रकार का धर्म–सग्रह एवं विनिर्णय आवष्यक था।

(ii) द्वितीय बौद्ध संगीति

थेर एवं थेरीगाथा से भली–भांति परिचित होने के लिए प्रथम बौद्ध संगीति के साथ–साथ द्वितीय बौद्ध संगीति के विषय में जानना आवष्यक है। प्रथम बौद्ध संगीति में बुद्धवचन के रूप में बुद्धवचन का जो त्रिपिटक के रूप में सुविनिष्चय हुआ था वह एक सौ वर्षों तक उसी रूप में जनवर्ग की स्मृति प्रवाह का विषय बना रहा। एक सौ वर्ष के पष्चात् वैषाली के वज्जिपुत्तक भिक्षुओं में इसके इस रूप में कुछ विकृति की आषंका देखी गई। वैषाली के कतिपय भिक्षुओं ने अपनी दिनचर्चा में कुछ ऐसे नियमों का समावेष किया जो प्रत्यक्षतः विनय विरूद्ध प्रतीत होते थे। इसे दस कप्प के रूप में पाते है।[59] पर वज्जिपुत्तकों की दृष्टि में खुद्दकानुखुक षिक्षापेदो की प्रज्ञप्ति के साथ उनका पालन औचित्य के विपरीत नहीं था। बुद्धवचन को लेकर उपस्थित इस भ्रम के निवारणार्थ यष की प्रेरणा से वैषाली के बालुकाराम नामक विहार में स्थविर रेवत की

अध्यक्षता में एक दूसरी बौद्ध संगीति बुलाई गई जिसमें उन विनय विरोधी नियमों का निराकरण एवं सात सौ भिक्षुओं द्वारा प्रथम संगीति के क्रम से ही बुद्धवचनों का आठ महीनों में संगायन किया गया। इस संगीति से इस बात पर प्रकाष पड़ता है कि इस सौ वर्ष की लम्बी अवधि में त्रिपिटक के रूप में संगृहीत बुद्धवचन मौखिक परम्परा में विद्यमान थे तथा समस्त वाते मौखिक क्रम में होते हुए भी उनमें तनिक भी व्यतिक्रम असहय था। वैषाली में जो सामान्य विकृति देखी गई वह तुरंत असहय हो उठाी। जिसके फलस्वरूप पुनः बुद्धवचनन भिक्षुकंठ से मुखरित हो संषुद्ध सुवर्ण के समान पूर्ववत जनवर्ग की स्मृति में प्रवाहगत हो उठे[60]। चुळवग्ग तथा महावंष के अनुसार सात सौ भिक्षुओं द्वारा किये गये इस धर्म– संगायन का उल्लेख है। इस कारण इसे सप्तसतिका भी कहा गया है। आचार्य बुद्धघोष ने अपनी विनयट्ठ कथा ''समन्तपासादिका'' में इस स्पष्टीकरण किया है कि धर्म–विनय के संगायन में संलग्न सात सौ भिक्षुओं द्वारा जो सद्धर्म का अंतिम निष्कर्ष दिया गया उसके प्रतिफल के रूप में बुद्धवाणी का वर्गीकरण पिटकों, निकायों, अंगों तथा धर्मस्कन्धों के रूप में हुआ।[61] महासांधिकों के आगमिक शास्त्र में विनयपिटक, सुतपिटक एवं अभिधर्म के अतिरिक्त संयुक्तपिटक एवं धारणीपिटक का भी उल्लेख मिला है। अतः यह निसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि इस समय तक भिक्षु संघ के पास एक ऐसा सुनिष्चित संगृहीत साहित्य अवष्य था जिसके आधार पर इस संगीति में भिक्षु विवाद ग्रस्त प्रष्नों का समाधान कर पाये।

(iii) तृतीत बौद्ध संगीति

वैषाली की द्वितीय संगीति के 136 वर्ष वाद प्रियदर्षी आषेक के शासन काल में एक तीसरी बौद्ध संगीति मोग्गलिपुत्ततिस्स के सभापतित्व में हुई। अषोक द्वारा बौद्ध संघ को प्रदत्त सुविधाएँ अन्य साधुओं के लिए आकर्षण का कारण बन गई थी। जिसके फलस्वरूप विभिन्न मतावलम्बी अन्तरतः अपने विचारों को मानते हुए वाहयतः भिक्षुवेष में बौद्धसंघ में सम्मिलित हो गये थे। उनके आगमन से बौद्ध आचार एवं सिद्धान्त दोनों के स्वरूप में विकृति की सम्भावना थी। इन विधर्मियों का निष्काषन एवं बुद्धवचन का वास्तविक स्वरूप का संगायन ही इस संगीति का मुख्य उद्देष्य था।

अषोक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने सर्वत्र अपनेसाम्राज्य में, प्रत्यन्त प्रदेषो में तथा सुदूर पष्चिमी विदेषों में ''धर्म विजय'' का प्रयत्न किया। जिसके प्रतिफल स्वरूप अपने नव धर्मदूतों की परिषद नौ स्थानों में भेजी। इसे अनेक इतिहासकारों ने स्वीकार किया है कि अषोक का यह धर्म–विजय सद्धर्म का ही प्रचार था। अतः अषोक के संरक्षण के कारण मगध का एक धार्मिक सम्प्रदाय विष्व विजयी धर्म के रूप में परिणत हो गया। यह भी निष्चित ही कहा सकता है कि इस संगीति के फलस्वरूप भगवान बुद्ध के उपदेषों का स्वरूप जो त्रिपिटक के रूप में प्रथम दो संगीतियों में अवतरित हुआ था वह प्रचारार्थ इन दूतों द्वारा भिन्न–भिन्न स्थानों में भेजा गया। वह इस प्रकार है–

1. मज्झन्तिक स्थविर – काषमीर तथा गांधार

2. महादेव स्थविर – महिष्मण्डल

3. रक्खित स्थविर – वनवासी

4. योनक धर्मरक्खित – अपरान्त प्रदेष

5. महाधम्मरक्खित – महारट्ठ

6. महारक्खित स्थविर – यवन

8. सोण तथा उत्तर – सुवण्ण भूमि

9. महेन्द्र, इट्ठिय, उत्तिय, सम्बल तथा भद्रषाल – ताम्रपर्णी

यहाँ यह उल्लेखनीय प्रतीत होता है कि तृतीय संगीति के पष्चात मोग्गलिपुत्त ने महेन्द्र को इट्ठिय, उत्तिय, सम्बल और भद्रषाल के साथ धर्म–प्रचार के लिए लंकाधिपति देवानाप्रियतिस्स के पास श्रीलंका भेजा। उस समय महेन्द्र को बौद्ध धर्म में प्रविष्ट हुए बारह वर्ष हुए थे। पीछे संघमित्रा ताम्रलिप्ति से नाव द्वारा जम्बुकोल पहुंची और रानी अनुला को प्रव्रजित कर लंका में भिक्षुणी संघ की स्थापना की। इस प्रकार सिंहल में भिक्षु और भिक्षुणी संघ की स्थापना का महेन्द्र और संघमित्रा द्वारा प्रथम प्रयास हुआ।[63] अतः तृतीय संगीति के फलस्वरूप बौद्ध धर्म एक विषाल भूमि में प्रसारित हो अपार जन समुदाय का शासक बना रहा। शायद अषोक को यह 'धम्म विजय' भारत को जगत गुरू के रूप में प्रतिष्ठापित करने में सहायक सिद्ध हुई।

(iv) चतुर्थ बौद्ध संगीति

वंस साहित्य के अनुसार चतुर्थ संगीति में धर्म और विनय का संगायन बुद्ध के परिनिर्वाण के दो सौ अड़लीस वर्ष पष्चात लंकाधिपति देवानांप्रिय तिस्स के शासन काल में अरिट्ठत्थेर की अध्यक्षता में अनुराधापुर के थूपाराम विहार में हुआ था[64]। इस संगीति की सूचना जिन संदर्भो से प्राप्त होती है उनमें महावंस, दीपवंस सासनवंस तथ सद्धमसंगहो का स्थान मुख्य है। इस संगीति का प्रयोजन मुख्यतः महेन्द्र तथा अन्य साथियों द्वारा आहृत बुद्धवचन को लंकाद्वीपवासियों के अन्तः तल में समाविष्ट कराना था। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि बुद्धषासन के मूल को दृढ़ करना इस संगाायन का मुख्य प्रयोजन था।[65] परम्परा के अनुसार साठ हजार भिक्षुओं से परिवारित अरिट्ठत्थेर ने धर्मासन पर आसीन हो विनय निदान का पाठ किया। जिस प्रकार भारत में उक्त तीन संगीतियों में महाकाष्यप, यष तथा मोग्गलिपुत्ततिस्स की अध्यक्षता में धर्म तथा विनय का पिटक, निकाय, अंगादि प्रभेदों में विभाजन कर उनका संगायन किया गया था तदनुरूप इस संगीति में भी सम्पूर्ण बुद्धवचन का संगीति का संगायन किया गया। यहां यह भी स्मरणीय है कि यह चतुर्थ बौद्ध संगीति थेर वादी बौद्ध परम्परा को ध्यान में रखकर की गयी थी। इसी का समानान्तर कुषाण – सम्राट कनिष्क के समय में चतुर्थ बौद्ध संगीति काष्मीर में अथवा जालन्धर में आयोजित की गयी, जिसमें

विभाषा शास्त्र का संगायन किया गया था इसमें सर्वास्तिवाद नामक बौद्ध सम्प्रदाय से जुड़े हुए बुद्धवचनों का संग्रह किया गया।

लंका की इस संगीति के सफलता पूर्वक सम्पन्न होने के फलस्वरूप बुद्धषासन का मूल दृढ़ से दृढ़तर होता चला गया तथा यह लंकाद्वीपवासियों के हृदय का सम्राट बन गया। तदुपरान्त लंका में महाविहार की स्थापना का सिलसिला चल पड़ा तथा त्रिपिटक के अध्ययन का क्रम आगे बढ़ता रहा। यद्यपि त्रिपिटक अध्ययन का यह क्रम अभी तक मौखिक ही था।

(v) पंचम बौद्ध संगीति

चतुर्थ संगीति के उपरांत भी बुद्धवचन का रूप मौखिक ही रहा। भारत के स्थविरों की भांति सिंहलवासी स्थविरों ने भी उसे उसी परिषुद्ध रूप से स्मृति में संजोए रखा। समय की गति देख कालान्तर में उन स्थविरों को ऐसी आषंका हुई कि भविष्य में शासन तथा लोक में कई दृष्टियों से ह्रास हो सकता है। इसलिए यह आवष्यक सा प्रतीत हुआ कि पूर्व की संगीतियों में संकलित बुद्धवचन का पुनः संगाायन द्वारा रूप विनिष्चित कर लिपिबद्ध कर दिया जाय।[66] अतः इसे ग्रन्थों में लेखबद्ध करना वांछनीय जान सभी धर्मधर, विनयधर तथा बहुश्रुत भिक्षुओं ने लंकाधिपति वट्टगाामिनी अभय से निवदेन किया कि बुद्धवचन और उसकी अट्ठकथा मुखपाठ परम्परा द्वारा आयी थी। वह अभी भी मुखपाठ में ही विद्यमान है। अतः भिक्षुओं को यह आषंका हुई कि अट्ठकथासहित सम्पूर्ण बुद्धवचन आचार्य षिष्य परम्परा के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चला आ रहा था, परन्तु इसके भविष्य में ह्रास की सम्भावना लवती है यह जान कर भिक्षुओं ने सम्पूर्ण बुद्धवचन तथा अट्ठकथाओं को पुस्तक के रूप में लिपिबद्ध करने का दृढ़विचार व्यक्त किया। कहा जाता है कि प्रथम संगीति के अवसर पर अजातषत्रु द्वारा निर्मित मण्डप की भांति लंकाधिपति वट्टगामीनि अभय ने एक विषाल मण्डप का निर्माण कराया। इसके मध्य मे भिक्षुओं के लिए समुचित आसन लगााये गये तथा लेखन सामग्री की सुविधा प्रदान की गई।[67] तदुपरान्त निर्वाचित भिक्षुओं ने अपने आसन पर आसीन हो धर्म तथा विनय का उसी प्रकार संगायन किया जिस प्रकार महाकाष्यप, यष, तिस्स तथा महेन्द्र ने किया था। संगायन के अनन्तर समस्त बुद्धवचन लिपिबद्ध कर लिये गये।

त्रिपिटक के रूप में समस्त बुद्धवचनों का लिपिबद्ध होना पालि साहित्य एवं बौद्ध परम्परा की एक महत्वपूर्ण घटना है। महावंस में यह प्रसंग आता है कि मुखपाठ में विद्यमान तीनों पिटकों तथा अट्ठकथाओं को धर्म की चिरस्थिति के लिए पुस्तक के रूप में लिपिबद्ध कर लिया गया। यह कार्य वट्टगामीनि अभय के काल में हुआ। सद्धम्म संगहो के अनुसार त्रिपिटक तथा अट्ठकथा के लिपिबद्ध होने की घटना प्रथम संगीति के रूप में वर्णित है– ''पञ्चमं धम्मसड्.गीति सदिसं एवं अकासि।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि बुद्धवचन को लिपिबद्ध करने का यह कार्य वट्टगाहमनी के काल में सम्पन्न हुआ।

(ग) बुद्धवचन के विभाजनों में थेर एवं थेरीगाथा का स्थान

अट्ठकथा साहित्य से विदित होता है कि प्रथम संगीति के अवसर पर ही आर्य महाकाष्यप आदि ने बुद्धवचनों का अनेक दृष्टियों से विभाजन कर संगायन किया था, जो वट्टगामीनि के कारण (प्रथम शताब्दी पूर्व) में लिपिबद्ध कर दिया गया। सम्पूर्ण बुद्धवचनों को कई दृष्टियों से विभाजित किया गया है। उनमें निम्नलिखित सात दृष्टिकोणों से किए गए विभाजन प्रमुख हैं। इन विभाजनों का संक्षिप्त परिचय देना प्रकृत प्रसंग में इष्ट है जिससे यह विदित हो सकेगा कि थेर एवं थेरीगाथा बुद्धवचन संग्रहो में किस स्थान पर स्थित है।

(i) रसवसेन

भगवान बुद्ध के उपदेषों का मूल्यांकन रस की दृष्टि से करने पर उनमें केवल एक ही लक्षण घटित होता है, जो विमुक्ति इस के नाम से अभिहित होता है । इस दृष्टि से समस्त बुद्धवचन ''रसवसेन एकविधं'' कहकर एक ही भाग में विभक्त है। इस प्रकार बुद्ध की जो कुछ भी देषना जहाँ कहीं भी दी गई है, वह विमुक्ति को लक्ष्य करके ही दी गई है। जिस प्रकार गंगा जमुनादि नदियां नाना दिषाओं में प्रवाहरत होते हुए भी सागरोन्मुख हैं। उसी प्रकार से भगवान के विभिन्न परियायों से दिये गये उपदेष भी मूलतः निर्वाणोन्मुख है। सम्पूर्ण धर्म और विनय भी एक रस अर्थात् विमुक्ति रस से सम्पन्न है।[68] जब कभी भी कोई प्रव्रज्या के लिए भगवान से याचना करता है तो उनके मुख से ये वाक्य स्वतः ही निःसृत होते हैं– ''स्वाक्खातो धम्मो, चर ब्रह्मचारियं सम्मादुक्खस्स अन्तकिरियाया'ति,[69] अन्य प्रसंगों में जिन नियमों का प्रज्ञापन किया गया है। उनके अन्तरतल में निर्वाण ही ध्वनित होता है। परिव्राजक को निर्वाण की महत्ता पर प्रकाष देते हुए भगवान ने कहा है–

आरोग्यपरमा लाभा, निब्बाण परमं सुखं।
अट्ठङ्गिको च मग्गानं, खेमं अमतगातिनं।।[70]

इस पृष्ठभूमि में इस प्रकार का कथन अनुचित नहीं होगा कि बुद्ध के समस्त वचन निर्वाण–परायण, निर्वाण गामी तथा निर्वाणोन्मुखी हैं। इनके ऐसा होने से अनेक होते हुए भी रस की दृष्टि से एकविधेन कहा गया है।[71] थेर और थेरीगाथा में भी सभी निर्वाण प्राप्त भिक्षु और भिक्षुणियां एक ही रस का अवगाहन कर विमुक्ति रस का निमज्जन कर रहे हैं।

(ii) धम्मविनय वसेन

बुद्धवचन के विभाजन का दूसरा क्रम धम्म और विनय की दृष्टि से हैं। विनय शब्द से वैसे उपदेष अभिप्रेत हैं जो कायिक और वाचिक अध्याचार के निषेधस्वरूप कहे गये हैं। संवर असंवर सम्बधी तथा विधिनिषेधपरक समस्त उपदेष विनय के अन्तर्गत कहे जाते हैं। इस दृष्टि से विनय को बुद्ध शासन की आयु कहा गया हैं। विनय की विद्यमानता ही आयु की विद्यमानता है।[72]

विनय विषयक उपदेषों के अतिरिक्त जितने प्रकार के उपदेष हैं वे सभी ''धम्म'' कहलाते हैं– ''तत्थ विनय पिटकं विनयो अवसेसं बुद्धवचनं धम्मों।''[73] धर्म के लिए पालि में दूसरा शब्द– सुत्त'' या ''सुत्तन्त'' भी आया है। प्रथम संगीति के स्थविर भिक्षुओं ने धर्म और विनय का ही संग्रह किया– धम्मं च विनयं च संगाय्यामा''[74] इस प्रकार भगवान बुद्ध के समस्त उपदेष जिन्हें उन्होंने नाना जनपदों में चारिका करते हुए दिया था तथा जो तीन पिटकों में संरक्षित है, वे सभी इन्हीं धम्म और विनय के अन्तर्गत आ जाते हैं। अतः यह कहना युक्ति संगत प्रतीत होता है कि उपदेषों के विभाजन का दूसरा क्रम धम्म और विनय की दृष्टि से होने के कारण ही धम्म विनय वसेन दुविधं कहा गया है।[75] इस दृष्टि से थेर एवं थेरीगाथा को धम्म के अन्तर्गत रखा जा सकता है क्योंकि इन दोनों संग्रहों में भगवान बुद्ध द्वारा उपदृष्ट धम्म को ही उनके क्रम को स्थविरों एवं थेरी षिष्याओं ने कवित्वमीय गीति के कलेवर में प्रस्तुत किया है।

(iii) वाचावसेन

बुद्धवचन के विभाजन का एक अन्य क्रम उनकी वाणी की निःसृति की दृष्टि से देखा जाता है। इस क्रम में इनके तीन विभाग हैं जो पठम बुद्धवचन, मज्झिम बुद्धवचन एवं पच्छिम बुद्धवचन के रूप में अभिव्यक्त हैं।

1. पठमा वाचा

बोधि लाभ के अनन्तर जिस वचन का सर्वप्रथम निःसरण हुआ वह तथागत का प्रथम वचन कहलाता है–

यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा, आतापिनो झायतो ब्राह्मणस।
अथस्स कंखा वपयन्ति सब्बा, यतो पजानाति सहेतुधम्मं ।।
यदा हवे पातु भविन्त धम्मा, आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।।
अथस्स कंखा वपयन्ति सब्बा, यतो खयं पच्चयानं अवेदि।।
यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा, आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
विधूपयं तिट्ठति मारसेनं, सूरो व ओभासयमन्तलिक्खं ति[76]

धम्मपद भाणकों की परम्परा में तथागत के मुख से निःसृत एक अन्य वाणी का उल्लेख है। बुद्ध ने तृष्णा की पहचान की तथा उसका समूल उच्छेद किया। हर्षातिरेक से उपजी यह वाणी भी पठमावाचा कहलाती है–

अनेक जाति संसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं ।।
गहकारक दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्.खतं।

विसड्.खारगत्तं चितं तण्हानं खयमज्झगा।।[77]

2. पच्छिमावाचा

बुद्ध भाषित अंतिम वचन को ही पच्छिमा वाचा कहते है। पैंतालीस वर्षों तक धर्मोपदेष के अनन्तर तथागत कुषीनारा के मल्लो के शालवन में युग्मषाल वृक्षों की सुखद छाया में सिंहसय्या लगाकर लेटे थे। सम्भवतः जनता तथागत को अनित्य प्रवाह से मुक्त न समझे इसलिए इस पर बल देते हुए उनकी अन्तिम वाणी फूट वड़ी– ''हन्द दानि, भिक्खवे, वयधम्मा सड्.खाराअप्पमादेन सम्पादेथा'' ति[78] यही तथागत की पच्छिमा वाचा है।

3. मज्झिमावाचा

ऊपर के दोनों वचनों के अभिप्राय प्रायः स्पष्ट है पठमावाचा और पच्छिमावाचा के मध्य पैंतालीस वर्षों के चारिका क्रम में विकीर्ण पुष्पों से सुसज्जित माला गूंथने के समान या इतस्ततः विकीर्ण रत्नों को सूत्रबद्ध कर सुषमा प्राप्त कराने के सदृष जो उनके उपदेष हुए उन्हें मज्झिमा वाचा कहा जाता है– ''उभिन्नं अन्तरे यं वुत्तं एवं मज्झिम बुद्धवचनं''[79] इस क्रम से पठमा, मज्झिमा तथ पच्छिमा वाचा नामक तीन विभागों से तथागत के समस्त उपदेषों के विभाजन करने का वर्णन उपलब्ध होता है[80]। इस विभाजन में थेरगााथा एवं थेरिगाथा को कहीं भी रखना अधुनिक दृष्टि से अषक्य है।

(iv) पिटकवसेन

बुद्धवचन के विभाजन का एक अन्य क्रम पिटक की दृष्टि से है। विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्म पिटक इसके तीन विभाग हैं। पिटक अथवा पात्र की उपयोगिता वस्तु संधारण के लिए है। पात्र स्वयं अपनी स्थिति बनाये हुए अपने आप में संधारित वस्तु की भी स्थिति का संरक्षण करता है। इसलिए यहाँ पिटक शब्द पात्र तथा पात्रगत वस्तु का द्योतक है। एतदर्थ वह पात्र जो भगवान बुद्ध के उपदेषों का संग्रह एवं संरक्षण करता है, पिटक कहलता है। इस तथ्य का उद्घाटन बुद्धद्योष की इन पंक्तियों में देखा जाता है जब उन्होंने कहा है–

पिटकं पिटकत्थविदू, परियतिभाजनत्थतो आहु।

तेन समोधानेत्वा, तयो पि विनयादयो ञेय्या।।[81]

संक्षेप में विनयपिटक, सुत्तपिटक एवं अभिधम्म पिटक के मूलभूत लक्षणों से यूक्त इसका सामान्य परिचय इस रूप में हैः–

1. विनयपिटक

जन सामान्य में कोई आचार्य अपना विचार लेकर आता है तो विधि निषेध परक कुछ नियमों की उद्भावना करता है। भगवान बुद्ध ने भी संघ संचालन के लिए कुछ निमयों का प्रज्ञापन किया है वे ही नियम विनय पिटक में संगृहीत हैं। विनय पिटक भिक्षुसंघ की आधारषिला अर्थात् मेरूदंड है। ब्रह्मचर्यवास

करते हुए भिक्षुओं के लिय क्या करणीय तथा क्या अकरणीय है, इनका यहाँ संगोपांग वर्णन उपलब्ध होता है। उन समस्त अपराधों की भी चर्चा यहाँ प्राप्त होती है, जिनसे भिक्षुओं को विरत रहने के लिए कहा गया है। साथ ही यह भी दर्षाया गया है कि किस अपराध के फलस्वरूप अमुक भिक्षु को किस प्रकार के दण्ड का अधिकारी होना होगा। इसी कारण विनय पिटक को बौद्धसंघ का संविधान कहा गया है। अतः धार्मिक दृष्टि से उनका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। महावग्ग एवं चूळवग्ग के सम्यक अध्ययन से प्रकट होता है कि यहाँ सर्वत्र आज्ञाएँ तथा उनकी पृष्ठभूमि में उन अध्यादेषों की भरमार है। जिन के पालन से ब्रह्मचर्य जीवन सफल होता है। आचार्य बुद्धघोष ने ''विनय'' की व्याख्या निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत की है–

विविध विसेसनयत्ता, विनयतो चेव कायवाचानं।

विनयत्थ विदूहि अयं, विनयो विनयो ति आक्खातो।।[82]

विनय पिटक के तीन विभाग

विनय पिटक के तीन विभाग हैं– सुत्तविभंग, खन्धक और परिवार। सुत्तविभंग पुनः पाराजिक और पाचित्तिय नामक दो विभागों में विभक्त हैं। एक अन्य दृष्टि से भिक्षु विभंग एवं भिक्षुणी विभंग या भिक्षु पातिमोक्ख और भिक्षुणी पातिमोक्ख इसके दो विभाग कहे जाते हैं। खन्धक में महावग्ग और चूळवग्ग नामक दो वर्ग या परिच्छेद है। परिवार इन समस्त विभागों के अर्न्तगत कही गई बातों का परिषिष्ट मात्र है। इन विभागों को संक्षित रूप देते हुए धर्मकीर्ति महास्वामी ने निम्नलिखित गाथा कहीं है–

तेसु पाराजिकं कण्डं, पाचित्तियं अथापरं।

भिक्खुनीनं विभंगो च, महावग्गो तथापरो।

चूळवग्गो परिवारो, विनयपिटकं मतं।।[83]

2. सुत्तपिटक

कहा जाता है भगवान बुद्ध ने अपने चारिका क्रम में जो व्यवहारपरक उपदेष दिये थे। उनका संग्रह सुत्त पिटक में किया गया है। ऐसे उपदेषों को सुत्त शब्द से अभिहित करने के छः कारण हैं, वे हैं– 1. अत्थानं सूचनतो 2. सुवुत्ततो 3. सवनतो 4. सूदनतो 5. सुत्ताणा 6. सुत्तसभागतो ''अत्थानं सूचनतो'' से यह अभिप्रेत है कि आत्म हितार्थ एवं परहितार्थ समस्त बाते इसके द्वारा सूचित की जाती है। ''सुवुत्ततो'' से यह प्रकट होता है कि ये समस्त उपदेष वेनेय्य जनो की चित्तवृत्ति के अनुरूप दिये गये हैं। आगतजनों की मनोदषा के अनुरूप उपदेष करना सुवुत्ततो कहा गया है। ''सवनतो'' कहने का तात्पर्य यह है कि अध्याषय के अनुकूल उपदेषों को प्राप्त कर उनका अनुषरण करने से वैसे ही फल की प्राप्ति की सम्भावना है जैसे षिष्यों में फल का उद्‌भव होता है। ''सूदनतो'' से तात्पर्य यह कि जिस प्रकार धेनु से क्षीर का प्रघरण होता है उसी प्रकार उन उपदेषों के सम्यक सेवन एवं अनुषीलन से चित्त में शांति का प्रस्फुटन होता है। ''सुत्ताणा' में यह भाव निहित है कि ये उपदेष अपने अनुयाइयों के त्राण कर्त्ता हैं। केवल त्राण ही नहीं वरन

सुष्ठु त्राण अर्थात् अन्तरायों के अवरोध के लिए सुदृढ़ कवच सदृष हैं। ''सुत्तसभागतों'' से सम्यक मार्ग निर्देष की ध्वनि निःसरित है। जिस प्रकार काष्ठकार कार्य में प्रवृत होने के पूर्व सूत्र से काष्ठ को रेखांकित कर देते हैं तथा उस कार्य में आगे चलकर वह सूत्र की रेखा ही प्रमाण होती है उसी प्रकार ''सुत्त'' नाम से अभिव्यक्त वचन ब्रह्मचर्य परिपालन में प्रमाण स्वरूप है।

सुत्तपिटक को व्यवहार देषना भी कहा गया है। इसका अभिप्राय है कि इसके उपदेष जीवन की प्रतिदिन की घटनाओं से सम्बन्धित दुष्टान्त, उपमादि के सहारे दिये गये हैं। सुत्तविटक के पांच विभाग हैं जो दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अड्.गुत्तरनिकाय, खुद्दकनिकाय के नाम से विख्यात है। निकाय वसेन के अन्तर्ग इनका विस्तृत अध्ययन किया जायेगा।

3. अभिधम्मपिटक

पिटक के आधार पर बुद्धवचन के तीसरे विभाग को अभिधम्मपिटक कहते हैं। यह भगवान बुद्ध की तत्व परक देषना का संग्रह है। अभिधम्म शब्द में अभि उपसर्ग विषिष्टता अर्थ को द्योतित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसे दृष्टि से जो धर्म अन्यों की उपेक्षा विषिष्ट है, उनका संग्रह इस पिटक में होने के कारण इस अभिधम्मपिटक कहते हैं।[84] समन्तपासादिका में कहा गया है कि विनयपिटक आणादेसना तथा सुत्तपिटक वोहारदेसना है। अभिधर्मपिटक को परमार्थ देसना कहा गया है।[85] परम्परानुसार किसी विषय का प्रतिपादन तब ही पूर्ण समझाा जाता है कि जब उसकी प्रवृत्ति तथा निरूक्ति सुत्तन्तभाजनीय, अभिधम्मभजनीय तथा पञ्हापुच्छक इन तीन नयो से हो। सुत्त और विनय में इस प्रकार का विभाजन सम्भव नहीं है। अभिधर्म में विषय प्रतिपादन इन्हीं दृष्टियों से होने के कारण इसकी विषिष्टता कही जा सकती है। अभिधर्म के प्रायः सभी ग्रन्थों में विषय–चिन्तन प्रक्रिया के अन्तर्गत ये तीनों नय समवेत हैं।[86] अभिधर्म पिटक के सात प्रकरण हैं– धम्मसंगणि, विभंग, धातुकथा, पुग्गलपञ्ञति, कथावथु, यमक और पट्ठान। ये सभी प्रकरण पर्याय भेद से परमार्थ विषय चिन्तन में प्रवृत देखे जाते हैं। आचार्य बुद्धघोष ने इसकी विषेषता पर अन्य दृष्टियों से प्रकाष डालते हुए निम्नलिखित गाथा कही है– यं एत्थ वुद्धिमन्तो सलक्खणा पूजिता परिच्छिन्ना।

बुत्ताधिका च धम्मा अभिधम्मो तेन अक्खातो।।[87]

इन्हीं तीन पिटकों में विभक्त बुद्धवचन को पिटक वसेन तिविधं कहा जाता है। थेरगाथा एवं थेरीगाथा बुद्धवचनों के पिटकात्मक विभाजन से सुत्तपिटक के अन्तर्गत रखे गये हैं।

(v) निकायवसेन

बुद्धवचन का एक अन्य क्रम निकाय की दृष्टि से देखा जाता है। आचार्य बुद्धघोष ने निकाय शब्द की व्याख्या करते हुए यह दर्षाया है कि ''समूहनिवासा हि निकायो ति पवुच्चन्ति''[88] निकाय की दृष्टि से

बुद्धवचन का विभाजन पांच विभगों में किया गया है। वे है– दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अङ्. गुत्तरनिकाय एवं खुद्दकनिकाय[89]।

1.दीघनिकाय

दीर्घ आकार के सुत्तों के सग्रह वाले निकाय को दीघनिकाय कहा गया है। ये समस्त उपदेष शीलखन्धवग्ग, महावग्ग और पाटिकवग्ग नामक तीन वर्गो में विभक्त है; जिनमें क्रमषः तेरह, दस, एवं ग्यारह सुत्त है। इस प्रकार समस्त उपदेषों की संख्या चौतीस है। अट्ठसालिनी में कहा गया है–

चातुत्तिंसेव सुत्तन्ता तिवग्गो यस्स सङ्.गहो।

एस दीघनिकायोति पठमो अनुलोमिको।।[90]

2. मज्झिमनिकाय

निकाय ही दृष्टि से बुद्धवचन का द्वितीय भाग मज्झिनिकाय कहा गया है। परम्परा के अनुसार यह मध्यम आकारवाले एक सौ बावन सुत्तों का सग्रह है। मज्झिम निकाय के तीन उप विभाग है जो इस प्रकार है, मूलपण्णास, मज्झिमपण्णास और उपरिण्णास।

3. संयुत्तनिकाय

परिमाण की दृष्टि से छोटे बड़े मिश्र सुत्तों का संग्रह संयुत्तनिकाय तृतीय निकाय है। इसके अर्न्तगत सात हजार सात सौ वासठ सुत्त आते है जो पांच वर्गो में विभक्त हैः जिनके नाम इस प्रकार है– 1. सगाथावग्ग 2. निदान वग्ग 3. खन्ध वग्ग 4. सळायतन वग्ग 5. महावग्ग। पुनः प्रत्येक वर्गो का विभाजन संयुत्तों में हुआ है तथा एक संयुत्त में कई सुत्त आये हैं। इस प्रकार संयुत्त निकाय में कुल छप्पन संयुत्त हैं।

4. अङ्.गुतर निकाय

निकाय क्रम के अन्तर्गत यह चौथी संग्रह का नाम है। एक से लेकर ग्यारह अङ्.को के उत्तरोत्तर बृद्धि क्रम से उपदिष्ट होने के कारण इस सुत्र समूह को अंगुतर निकाय कहते हैं। इनके इस क्रम के कारण ही अन्य सम्प्रदाय में इस संग्रह का नाम एकोत्तरागम भी उपलब्ध होता है।

5. खुद्दकनिकाय

निकाय क्रम के अनुसार बुद्धवचन के पंचम विभाजन को खुद्दक निकाय कहते है। ऐसा प्रतीत होता है कि गणनाक्रम में खुद्दक पाठ, ध्म्मपद, उदान, इतिवुत्तक आदि छोटे छोटे ग्रन्थ ही उन आचार्यो के सामने मापदण्ड के रूप में आते होंगे जिनको लक्ष्य कर इसे खुद्दक निकाय के नाम से अभिहित किया गया। इस विचार की पुष्टि बुद्धघोष की नामकरणप्रणाली से भी हो जाती है।[91] खुद्दक निकाय में खुद्दकपाठादि जो पन्द्रह ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। वे निम्नलिखित हैं– 1. खुंद्दक पाठ 2. धम्मपद 3. उदान 4. इतिवुत्तक 5. सुत्तनिपात 6. विमानवत्थु 7. पेतवत्थु 8. थरेगाथा 9. थेरीगाथा 10. जातक 11. निद्देष, पटिसम्भिदामग्ग 13. अपदान 14. बुद्धवंस और 15. चरियापिटक।

इस प्रकार इन पांच निकायों के अन्तर्गत समस्त बुद्धवचन को विभाजित करते हुए निकायवसेन पञ्चविधं संग्रह की परम्परा देखी जाती है।

6. अंगवसेन

बुद्धवचन की एक अन्य विभाजनप्रणाली अंग की दृष्टि से है। इस दृष्टि से समस्त बुद्धवचन नव अंगो में विभक्त है। वे हैं– 1. सुत्त, 2. गेय्य, 3. वेय्याकरण, 4. गाथा, 5. उदान, 6. इतिवुत्तक, 7. जातक, 8. अब्भुतधम्म 9. वेदल्ल। पालि ग्रन्थों में इन नवांग विभाजन का निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है।

1. सुत्त

यद्यपि कि भगवान के सभी उपदेष सुत्त कहे जाते हैं। पर यहाँ सुत्त शब्द एक विषिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता दिखाई पड़ता है। अट्ठसालिनी या अन्य अट्ठकथाओं में बुद्धघोष ने सुत्तपिटक की व्यख्या के क्रम में ''सुत्त'' शब्द की व्याख्या के लिए जिन विषेषण पदों को प्रयोग किया है उनके अनुषीलन की पृष्ठभूमि में ''सुवुत्त'' शब्द को आधार मानकर ''सुत्त'' की व्याख्या में सार्थकता दिखाई पड़ती है। ''सुवुत्त'' शब्द में 'सु' उपसर्ग है और वुत्त क्रियापद है जिसका अर्थ है उत्तम ढंग से कहा गया। इस अर्थ को सुत्त शब्द का पर्याय माना जा सकता है। एतदर्थ ''सुवुत्त'' शब्द से सरल ढंग से कथित उपदेष ही अभिप्रेत कहे जा सकते हैं चाहे वे गद्य के हो चाहे पद्य में। इस दृष्टि से जिन उपदेषों को सुत्त के अन्तर्गत अट्ठकथा बतलाती है, वे सार्थक प्रतीत होते हैं।

2. गेय्य

अंग की दृष्टि से दूसरे विभाजन क्रम को गेय्य कहते हैं। इसके अर्न्तगत बुद्ध के ऐसे उपदेष आते हैं जो गाथा–परिवारित है– ''सब्बं पि संगायकं सुंत्त गेय्यं।''[93] गेय्य शब्द का अर्थ गाने योग्य होता है। यद्यपि पर्याय भेद से सभी गाथाएँ गेय्य हो सकती हैं पर परम्परा के अनुसार संयुत्त निकाय का सगाथावग्ग ही गेय्य कहा जाता है। इन गाथाओं में व्याप्त पद लालित्य को ही लक्ष्य कर इसे गेय्य कहा गया है। संस्कृत बौद्ध ग्रन्थों में सुत्रों के मध्य और अन्त में आई गाथा मात्र को ही गेय्य कहा गया है।[94] यह धारणा पालि परम्परा से व्यतिक्रम स्थापित करती है।

3. वेय्याकरण

''वेय्याकरण'' संस्कृत व्याकरण शब्द का शब्दगत अर्थ विषिष्ट प्रकार से अभिव्यक्त वचन होता है। अट्ठकथाओं के अनुसार इसकी एक दूसरी परिभाषा देखी जाती है। अट्ठसालिनी के अनुसार सम्पूर्ण अभिधर्मपिटक तथा गथा रहित सुत्त एवं अन्य आठ अङ्गों में असंगृहीत सुत्त व्याकरण कहे जाते हैं।[95] नेतिप्पकरणकार ने केवल गाथा रहित सुत्तों को ही व्याकरण बतलाया है।[96] इस परिभाषा की पृष्ठ भूमि में अभिधर्म तथा निगायक सुत्तों को व्याकरण कहा गया है। संस्कृत परम्परा के अनुसार– जो साधु शब्दों को असाधु शब्दों से पृथक कर अर्थ ज्ञापन करता है वह व्याकरण है।[97] बौद्ध संस्कृत के अनुसार सुत्रों के अर्थो

का विवरण करके उनके अभिप्राय का व्याकरण अर्थात प्रकाषन किया जाता है। अतः व्याकरण कथन का अभिप्राय यहाँ प्रकाषन से है।[98] यहाँ पालि एवं संस्कृत परिभाषा पर विचार करते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्यतः गद्यात्मक परिप्रष्नात्मक एवं विवरणात्मक उपदेषों को व्याकरण कहा जा सकता है।

4. गाथा

गाथा एक विषेष पद्य का नाम है। परम्परा के अनुसार थेरगाथा थेरीगाथा तथा ''सुत्त'' नाम से विरहित अन्य पद्यात्मक उपदेष गाथा कहे जाते हैं।[99] सुत्रों में दो पादों चार, पादों, पञ्चपादों या षटपादों से अभिव्यक्त पद के प्रयोग को ही गाथा कहा जाता है।[100] किसी भी श्लोक, गीत तथा कथा–वृतान्त आदि को भी गाथा कहा जता है।

5. उदान

सौमनस्य एवं ज्ञानयुक्त पद्याात्मक प्रीति वाक्यों को उदान कहते हैं। परम्परा के अनुसार यह बेरासी सुत्रों तक सीमित प्रीतिवाक्यों का नाम है।[101] सारत्थदीपनीकार ने इसे प्रीतिवेगसमुत्पन्न उदाहार कहा है यह गद्यात्मक एवं पद्यात्मक दोनो प्रकार के हो सकते है।[102] उदान में तीन लक्षणस्पष्टः परिलक्षित होते हैं। प्रथम यह कि प्रवल सौमनस्य सम्बेग से समविलसित होते हैं। द्वितीय यह कि सम्बेग के साथ ज्ञान का पूर्णतः सामञ्जस्य रहता है तथा तृतीय यह कि उनकी निसृति में प्रतिग्राहक या श्रोता की अपेक्षा नहीं रहती है। इस प्रकार हृदय के समस्त बन्धनों को भग्न कर अविच्छिन्न प्रवाह स्वरूप अनायास उद्‌भूत वचन ही उदान कहे जाते हैं।

6. इतिवुत्तक

अंग की दृष्टि से ''इतिवुत्तक'' नय उपलब्ध होता है।[103] प्रत्येक सुत्त के प्रारम्भ में ''वुत्त हेतं भगवता'' ऐसा निगमन वचन देखा जाता है। बुद्धघोष के अनुसार समस्त बुद्धवचनों में एक सौ दस सुत्त ही इन पदों से समवेत कहे गये हैं। प्राप्त पालि संस्करण में इनकी संख्या एक सौ बारह हैं। यद्यपि सभी वचन बुद्धभाषित या बुद्धानुमोदित है तथापि उनके मध्य 'इतिवुत्तक' शीर्षक से वचन विषेष के कथन का एक विषेष अभिप्राय है और वह सुत्तों में बाह्य और अन्तर्लक्षण के कारण है।

7. जातक

जन्म कथा का नाम जातक है। बुद्ध बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व जन्मों में बोधिसत्व के रूप में पारमिताओं को पूरा करते हैं। इन पारमिताओं के सहारे एक एक कुषलकर्म की पराकाष्ठा देखी जाती है। सिद्धार्थ गौतम ने दीपङ्कर बुद्ध के सम्मुख बुद्धत्व प्राप्ति के लिए घोर तपस्या की थी। वहाँ से लेकर बुद्धत्व लाभ तक उन्होंने कई जन्मों तक विभिन्न योनियों में उत्पन्न हो कुषल कर्म का संपादन किया। बोधिसत्व की कुषल चर्याओं का विवरण जिसमें उपलब्ध होता है उसे जातक कहते हैं। बुद्धघोष के अनुसार ऐसी कथाओं की संख्या पांच सौ पचास है।[104]

8. अब्भुत धम्म

बुद्धवचन के विभाजन का एक दृष्टिकोण अब्भुत धम्म के रूप में हैं। ऐसे सुत्त जो आष्चर्य एवं अद्भुत धर्म से समुपेत है तथा जिनमें विस्मयोत्पादक विवरण उपलब्ध हैं उसे अब्भुत धम्म कहा गया है।[105] ऐसे स्थलों पर बुद्ध के मुख से ऐसी सूचना दी गई है कि ये अब्भुत धम्म हैं। ''द्वितीय तथागत अच्छरीय सुत्त'' में भगवान बुद्ध ने आनन्द के आष्चर्य अद्भुत धर्म पर प्रकाष डालते हुए चार बातों पर प्रकाष डाला है प्रथम यह है। कि संसार में लिप्त प्रजा तथागत द्वारा धर्म का उपदेष दिये जाने पर उन्हें सुनते हैं। तथागत के उत्पन्न होने से यह प्रथम आष्चर्यपूर्ण बात देखी जाती है। इसे प्रकार मानरत प्रजा, अन्य उपसमरत प्रजा, अविद्यागत प्रजा तथागत द्वारा धर्मोपदेष दिये जाने पर उसकी ओर कान दे सुनती है।[106] इस दृष्टि से इसे अच्छरिय अब्भुत धम्म कहा गया है। असंग ने स्पृष्टतः दर्षाया है कि श्रावक बोधिसत्त्व और तथागत द्वारा उपदिष्ट परम आष्चर्य अद्भूत धर्मो का जो उपदेष है यही ''अब्भूत धर्म'' है।[107]

9. वंदल्ल

नवड्.ग प्रक्रिया के अन्तर्गत बुद्धवचन के विभाजन का अंतिम अंग वेदल्ल कहलाता है। वेद शब्द ज्ञान का पर्याय है। ऐसे अनेक सुत्र देखे जाते हैं जहाँ बुद्ध ने परिप्रष्नात्मक शैली में उपदेष दिया है। इस दिषा में देखा जाता है कि जिज्ञासु बुद्धोपदिष्ट धर्म में निहित ज्ञान से आप्लावित हो उठते हैं। ज्ञान के प्रकाष एवं परम सन्तोषजनित उत्साह से वे तथागत से पुनः पुनः प्रार्थना करते हैं कि उन्हें एतद् विषयक अन्य महनीय देषना की जाय। ऐसी ज्ञानातिरेकमयी एवं जिज्ञासा पूर्ण परिप्रष्नात्मक देषना को ''वेदल्ल'' कहते हैं।[108] मज्झिमनिकाय के चूलवेदल्ल सुत्त, महावेदल्ल सुत्त, सम्मा दिट्ठिसुत्त, सड्.खारभााजनीय सुत्त, महपुण्णमसुत्त तथा दीघनिकाय के सक्कपञ्ह सुत्त वेदल्ल के परिचायक हैं।[109] इस प्रसंग में सस्कृत बौद्ध आगमों में वैतुल्य शब्द का प्रयोग देख जाता है। वे उपदेष अपने विषिष्ट स्वरूप के कारण तुलना रहित हैं। फलतः वैतुल्य कहे गये हैं।[110]

(vii) धम्मक्खन्धवसेन

बुद्धवचन के विभाजन का एक दूसरा क्रम धर्मस्कन्ध की दृष्टि से देखा जाता है। कहा गया है कि इस दृष्टि से समस्त बुद्धवचन चौरासी हजार धर्मस्कन्धों में विभक्त है। परम्परा गत इन धर्मस्कन्धों को वेरासी हजार बुद्ध से और दो हजार भिक्षुओं से प्राप्त मानते हैं।[111] इस प्रकार चौरासी हजार धर्मस्कन्ध समस्त बुद्धवचन के परिचायक हैं। अट्ठसालिनी में बुद्धघोष ने कहा है– ''एकनुसंधिकं सुत्तं एकोधम्मक्खन्धो यं अनेकानुसंधिकं तत्थ अनुसन्धिवसेन धम्मक्खन्ध गणना[112] अर्थात् एक ही सुत्त में अनेक विषयगत प्रसंग चर्चित रहेंगे तो विषयप्रसंगानुसार वहाँ उतने धर्मस्कन्ध समझे जायेंगे। गाथा के प्रसंग में कहा गया है कि गाथाओं में प्रष्न पूछना एक धर्मस्कन्ध है तथा उनका उत्तर दूसरा धर्मस्कन्ध है। अभिधर्म में प्रत्येक तिक या दुक एक–एक धर्मस्कन्ध हैं। विनयपिटक में प्रसंगानुसार आये शीर्षक तथा अत्थि वत्थु, अत्थि मातिका, अत्थि

भाजनीय ऐसे विषयों को एक–एक धर्म स्कन्ध कहा गया है। इस नाम से भी बुद्धवचन की गणना देखी जाती है।

(ख) थेरगाथा एवं थेरीगाथा का परिचयात्मक अधययन

(i) थेरगाथा एवं थेरीगाथा का बुद्धवचन में स्थान

उपरिलिखित पृष्ठभुमि का संक्षिप्त विवरण देने के उपरान्त विषय प्रवेष के रूप में प्रकृत प्रसंग प्राप्त में अब प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रतिपाध विषय एवं तद्सम्बन्धी विवेच्य अड्गों का विवेचन इष्ट प्रतीत होता है। इस संदर्भ में थेर एवं थेरीगाथा का परिचय सांगोपागं अभीष्ट है। पूर्व के पृष्ठों में त्रिपिटक के अवतरण से लेकर बुद्धवचन के विभिन्न नायों में विभाजन के क्रम में सोपान के रूप में किञ्चित बातें कही गयी है। उनकी इस पृष्ठ भूमि में इन ग्रन्थों के स्थान का अभिदर्षन वाञ्छनीय प्रतीत होता है।

विभाजन प्रक्रिया के अन्तर्गत पहली दृष्टि रस–विषयक है। भगवान के सभी धर्म एक ही रस, विमुक्ति रस सम्पन्न कहे गये हैं। यस्मात् थेरगाथा एवं थेरीगाथा उसी धर्म के अन्तर्गत हैं। सभी थेर एवं थेरियों का बौद्धसंघ में प्रवेष का एकमात्र लक्ष्य दुखों का अन्त करना था। जो परमसुख विमुक्ति रस के रसास्वादन से प्राप्त हो सकता है। प्रतिपाद्य ग्रन्थ में सभी भिक्षु और भिक्षुणियां निर्वाण प्राप्त हैं, अर्थात् संसार के सभी बंधनों से विमुक्त हैं। इस तरह ग्रन्थ का रसवसेन स्थान निरूपण करते हुए कह सकते हैं कि दोनों का एक मात्र विमुक्ति रस के रूप में जन मानस पर आस्वादन हुआ है। फलः से सभी विमुक्ति–रस–सम्पन्न धर्म कहे जा सकते हैं।

दूसरा विभाजन–क्रम पठमा, मज्झिम एवं अन्तिमवचन की दृष्टि से है। इस के अर्न्तगत थेरगाथा एवं थेरीगाथा को प्रथम एवं मध्यम वचन के रूप में देखा जा सकता है। जब विभाजन प्रसंग धर्म एवं विनय की दृष्टि से प्रकृत होता है तो वहाँ इन ग्रन्थों के धर्म के अन्तर्गत देखा जाता है। बुद्धवचन का जो अन्य विभाग पिटक के अन्तर्गत उपलब्ध है उनमें थेरगाथा एवं थेरीगाथा सुत्त पिटक के अन्तर्गत संगृहीत है। विभाजन की इस प्रक्रिया को नया मोड़ देते हुए समस्त बुद्धवचन का दिग्दर्षण पांच निकायों के अन्तर्गत किया गया हैं। इस क्रम मे ये दोनों ग्रन्थ खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत देखे जाते है। बुद्धवचन के गाथा संयुत्त, गाथा विरहित, अभिव्यक्ति क्रम या अन्यान्य लक्षणों का विष्लेषण करते हुए जहाँ इन्हें नव अंगो में विभाजित किया गया है, वहां दोनों गाथा के अन्तर्गत आते हैं, जैसा कि ग्रन्थ के थेरगाथा एवं थेरीगाथा नामकरण से स्पष्ट है।

अंतिम विभाजन धर्म स्कन्धों की दृष्टि से है यद्यपि बुद्धघोष ने धर्मस्कन्धों की गणना की एक प्रक्रिया दर्षायी है तथापि उनका स्पष्टतर आधार दृष्टिगोचर नहीं होता है। उनके शब्दों से मात्र इतना स्पष्ट होता है कि समस्त बुद्धवचन चौरासी हजार धर्मस्कन्धों में विभक्त हैं। धर्मस्कन्धों का निरूपण उन्होंने प्रतिपादित विषय की संख्या के अनुसार किया है। इस दृष्टि से थेरगाथा दो सौ चौसठ अर्हत पद प्राप्त स्थविरों के

उद्गारों का संकलन होने के कारण दो सौ चौसठ धर्मस्कन्ध तथा थेरीगाथा में आये उद्गारों की संख्या तिहत्तर है, इसमें कुछ गाथाएँ स्थविरों के सामूहिक उद्गार हैं– दोनों का सम्मिलित कर 264 +73 = 373 (तीन सौ तेहत्तर) धर्मस्कन्ध कहे जा सकते हैं। इस प्रणाली से इन दो ग्रन्थों के स्थान की चर्चा निक्षिप्त विवरण की पृष्ठभूमि में युक्तियुक्त प्रतीत होती है।

थेरगाथा एवं थेरीगाथा का बुद्धवचन में स्थान–निरूपण के उपरांत आज थेर एवं थेरी गाथा के उपलब्ध संस्करणों का परिचयात्मक वर्णन भी आवष्यक है। पालि त्रिपिटक में सुत्तपिटक के अन्तर्गत पन्द्रह छोटे–छोटे ग्रन्थों से उपेत खुद्दक निकाय एक निकाय है। उसके अन्तर्गत पन्द्रह पुस्तकें हैं। जिनमें थेरगाथा का क्रम आठवां एवं थेरीगाथा का क्रम नवमां है थेरगाथा एक हजार दो सौ अट्ठासी गाथाओं में है तथा इक्कीस निपातों में विभक्त है। जिन स्थविरों की वाणी का कथन एक ही गाथा में है, उनका संग्रह एक निपात में है। इसी प्रकार जिनका कथन दो गाथाओं में है उनका सग्रह दुक निपात में और इसी प्रकार बढ़ते क्रम से साठ गाथाओं से अधिक महानिपात के अन्तर्गत हैं। थेरगाथा की भांति ही थेरीगाथा भी अर्हत्वपद प्राप्त स्थविरियों के प्रेरणप्रद उद्गारों का संकलन है। इस ग्रन्थ में 524 गाथाएँ हैं जो थेरगाथा के समान ही एक निपात से लेकर महानिपात तक सोलह निपातों में विभक्त हैं।

(ii) उपलब्ध संस्करण

थेरगाथा सिंहली लिपि में दो भागों में क्रमषः सूरिय गोड सुमंगल तथा अरियपञ्ञत्थेर द्वारा संपादित है। थेरीगाथा सिंहल लिपि में देवरक्खित नायक त्थेर द्वारा सम्पादित है। थेरीगाथओं के ये सिंहली संस्करण साइमन हेवावितरण दातव्य निधि द्वारा प्रकाषित है। मराठा बर्मा लिपि में म्यानमार सासन द्वारा सम्पूर्ण त्रिपिटक के सम्पादन के क्रम में थेर एवं थेरीगाथा सम्पादित हैं। स्यासी में भी उनके अनेक संस्करण उपलब्ध है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भद्यन्त आनन्द को सत्यायन तथ भिक्षु जगदीष काष्यप ने इन दोनों ग्रन्थों का सम्पादन देवनागरी लिपि में किया था जिसे भिक्षु उत्तम ने 1937 ई. में प्रकाषित किया। प्रोफेसर भगवत ने भी थेरीगाथा का सम्पादन देवनागरी लिपि में किया था जिसे मुम्बई विष्वविद्यालय ने सन् 1937 में प्रकाषित समिति द्वारा 1959 में नव नालन्दा महाविहार द्वारा प्रकाषित किया गया। इधर विपष्यना विसोध विन्यास द्वारा सम्पूर्ण त्रिपिटक प्रकाषन क्रम में 1988 ई. में थेरगाथा एवं थेरीगाथा का प्रकाषन किया गया है। थेरगाथा का एक हिन्दी अनुवाद भिक्षु धर्म रत्न ने किया जिसे महाबोधि सभा ने 1955 में प्रकाषित किया। थेरीगाथ का अनुवाद भिक्षु जगदीष काष्यप ने परमत्थ दीपनी के आधार पर किया, जिसका प्रकाषन 1950 में जो सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा किया गया।

(iii) थेर एवं थेरीगाथा का ऐतिहासिक विवरण

विद्वानों ने खुद्दक निकाय के सम्पूर्ण ग्रन्थ को पहले चार निकायों के बाद का संकलन माना है। बुद्धवचन के रूप में उनका महत्व भी उनके बाद ही समझना चाहिए। चीनी आगमों में खुद्दक निकाय को

एक स्वंत्र निकाय के रूप में गणना नहीं की गई। थेर एवं थेरीगाथा काव्यमय हैं। स्थविरवादी परम्परा बुद्धवचनों की गंभीरता को काव्योचित भावनाओं और कल्पनाओं में खो देना पसन्द नहीं करती थी। इसलिए इसे वाद की रचना माना जा सकता है। फिर भी थेरगाथा का स्वरूप काव्यात्मक होते हुए भी उसकी मूल भावना सर्वाषं में बौद्ध है। थेर एवं थेरीगाथा को भिक्षु भिक्षुणियों की कृतियां कहा गया है। वास्तव में बात यह है कि तत्कालीन लोक साहित्य और भावनाओं का प्रभाव थेरगाथा एवं थेरीगाथा में अधिक परिलक्षित होता है। इन सारी आलोचनाओं क बाद भी कुछ तथ्य प्राचीन युग के हैं, यह भी उतना ही सुनिष्चित तथ्य है।

थेर एवं थेरीगाथा के ऐतिहासिक संदर्भो से यहाँ आकलन करना भी युक्ति युक्त प्रतीत होता है और अनके ऐतिहासिक तथ्य सामने आते है। कुछ संदर्भो को यहाँ उद्धृत करना अवष्यक है डाकु अंगुलिमाल की कथा बुद्ध कालीन है, सारिपुत्त मोग्गल्लान थेर की घटना, ऐतिहासिक है, महाकाष्यप की कथा ऐतिहासिक हैं इन सारे लोगों की जिंन्धिदगियां और उनके जीवन से सम्बन्धित घटनाएँ त्रिपटक साहित्य में सर्वत्र उपलब्ध हैं। अंगुलिमाल की कथा अक्षरषः मज्झिम निकाय में आई है। और पूर्णतः प्रतिलिपि सी उद्धृत है। सारिपुत्त के जीवन से सम्बन्धित घटनाएँ भी त्रिपिटक के कथानकों के अनुरूप है। थेरीगाथा मे भिक्षुणियों और मार के बीच कुछ वाद, हैं, यह भी संयुत्त निकाय के अन्तर्गत भिक्षुणी संयुत्त के में अर्न्तगत हैं, यहाँ उसका रूपान्तरण मात्र है। इन दोनो संग्रहों के बहुत सारे गीत, उदान वाक्य, कथानक, चरित्र और नाम कहीं न कहीं निकायों से लिये गये हैं, धम्मपद की अनेक गाथाएँ थेर–थेरियों के उदान वाक्य में उसी शब्द और कलेवर में हैं। सुत्तनिपात की अनेक सुत्तों का सार वहाँ दृष्टव्य हैं। वास्ताव में इस उल्लेख से पता चलता है कि चार निकायों की उपमायें इस सीधे उद्धृत की गयी है इसलिए कुछ अंषों की प्रमाणिकता पर कतई सन्देह की गुंजाईष नहीं है। अषोक के षिलालेखों में ''विनय समुकसे के अन्तर्गत विनय सम्पूर्ण की चर्चा है, तो थेर–एवं थेरी गाथा में आगत सारिपुत्त मोग्गल्लान की प्रव्रज्या आदि को कैसे ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता है। यह सत्य है उपर्युक्त दोनों संग्रह अपने वास्तविक रूप में उत्तरकालीन क्योंकि उपर्युक्त उद्धरण प्रक्षिप्त माने जा सकते हैं। यह ठीक है कि दोनों संग्रहों में बहुत से ऐसे गीत हैं, जिनकी रचना वाद मे हुई है। एक भिक्षु कहता है– मैंने केवल एक पुष्प भेंट किया फल स्वरूप मैंने आठ सौ करोड़ वर्षों तक स्वर्ग के सुख भोगे और अन्त में निर्वाण प्राप्त किया। यह बौद्ध धर्म को ऐसे सम्प्रदाय की सूचना देता है जो उत्तर कालीन महायान साहित्य से पहले विकसित नहीं हुआ था। एक सात वर्षों का भिक्षु यौगिक चमत्कार दिखाता है। दूसरा भिक्षु अपने हजार रूप बनाकर आकाष में उड़ने लगता है। दस हजार देवता मिलकर सारिपुत्त का ब्रह्मलोक में स्वागत करते हैं और भक्ति प्रदर्षित करते हैं। इस प्रकार के पाठ बौद्ध धर्म के प्राचीन रूप से मेल नहीं खाते।

कुछ थेर एवं थेरियों के उदान वाक्य में जो जीवन कथा है वह वास्तव में अषोक के बाद के प्रतीत होते हैं अषोक के भाई, अषोक का पुत्र और पुत्री, मंत्री एवं सहयोगी भिक्षु बनते देखे गये हैं। इसे बौद्ध कालीन कतई नहीं कहा जा सकता है। कुछ गाथएं बौद्ध धर्म के पतन काल का सा प्रतीत होता है। इसीदासी थेरी के उदान को पढ़ने से ऐसा लगता है कि लड़की दुर्भाग्य के वसीभूत होकर भिक्षुणी बनती है। एक पुरूष भिक्षु बनता है और पन्द्रह दिन बाद उस वेष को उतार कर शादी कर लेता है यह वास्तविक जीवन का चित्र है तो बौद्ध धर्म के पतन की ओर ईषारा करता है। के. ई. न्युमेन की मान्यता है कि उपर्युक्त काव्य गौतम बुद्ध के जीवन काल में ही संगृहीत एवं सुरक्षित हो गये थें और उनका निर्वाण होने पर सुसम्पादन द्वारा एक अलग रूप दिया गया, पर इस मान्यता के कोई प्रमाण नहीं है।

इस प्रकार त्रिपिटक के अन्य संग्रहों के समान इसमें भी नवीन और प्राचीन अंष मिले जुले हैं। विद्वानों को प्रत्येक अंष का पृथक–पृथक रूप से समय निर्धारण उसकी अपनी योग्यता के आधार पर करना होगा। थेर एवं थेरिगाथा की प्रामाणिकता के विषय में संगीतियों एवं परम्पराओं के आधार पर कुछ विचार डॉ. भरत सिंह उपाध्याय ने अपनी पुस्तक पालि साहित्य के इतिहास में कतिपय ऐतिहासिक संदर्भो को उद्धृत करते हुए किया है। उस संदर्भ के आलोक में उक्त ग्रन्थ की ऐतिहासिकता पर विचार किया जाना युक्ति संगत होगा। प्रथम संगीति के अवसर पर दीघभाणक भिक्षुओं ने जिन ग्रन्थों को प्रामाणिक नहीं माना, वह है– बुद्धवंस चरियापिटक और अपदान। इसमें थेरगाथा एवं थेरीगाथा का उल्लेख नहीं है। अतः इस परिप्रेक्ष्य में थेर एवं थेरीगाथा को प्रामाणिक कहा जा सकता है। द्वितीय संगीति के अवसर पर महासंगीतिक भिक्षुओं ने जिन ग्रन्थों के प्रामाणिक नहीं माना, उनमें है– पटिसम्भिदामग्ग, निद्देष और जातक के कुछ अंष। इसके संदर्भ में भी थेरगाथा एवं थेरीगाथा को प्रामाणिक कहा जा कसता है। तृतीय विचार के रूप में स्थायी परम्परा को रख सकते हैं स्यामी परम्परा के अनुसार विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, अपदान, बुद्धवंस और चरियापिटक प्रामाणिक नहीं समझे जाते हैं। इस अध्ययन के आलोक में थेरगाथा एवं थेरीगाथाओं की ऐतिहासिक प्रमाणिकता संदिग्ध है। इन ग्रन्थों के संकलन की निष्चित तिथि के सम्बन्ध में तो कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु इतना अवष्य कहा जा सकता है इनमें जो अधिक उत्तर कालीन विवरण है वे भी अषोक काल के बाद के नहीं हैं। धम्मपद, सुत्तनिपात, उदान और इतिपुत्तक के बाद कालक्रम की दृष्टि से जातक और थेर–थेरीगाथओं का स्थान कहा जा सकता है। आलोच्य ग्रन्थ में बुद्धकालीन भिक्षुओं और भिक्षुणियों की गाथाएँ हैं। केवल थेरगाथा की कुछ गाथाएँ अषोक के समय के भिक्षुओं की बतायी जाती है।[113] अतः सम्भव है कि थेरगाथा ने भी अपना अंतिम स्वरूप अषोक के काल में ही प्राप्त किया हो और तृतीत संगीति के अवसर पर इसका संगायन भी हुआ हो। इस संदर्भ में अपदान पर भी दृष्टि डालना आवष्यक है। जिस प्रकार बुद्धवंस चारियापिटक और निद्देस जातक के बाद की रचनाएँ हैं उसी प्रकार थेर थेरीगाथाओं के बाद अपदान का भी प्रणयन निष्चित है। थेर एवं थेरी अपदान में भिक्षु एवं

भिक्षुणियों के पूर्व जन्म की कथाएँ हैं। इस प्रकार अपदान को थेर एवं थेरीगाथा के पूरक के रूप में जाना जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. कनिंघम, एलेक्जेण्डर, आर्केलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द–5 पृष्ठ–105–8; ख, पिगट, प्रिहिस्टरिक इण्डिया, पृष्ठ–257–258;
2. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, स्टडीज इन दी कोरिजिन्स औव बुद्धिज्म, अध्याय–8
3. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ–4
4. मैकक्रिन्डल, एन्सिएन्ट इझिडया ऐज स्क्राइब्ड वाई मेंगास्थनीज एण्ड एरियन–पृष्ठ–97–105;
5. अष्टध्यायी, 2, 4, 9, पर महाभाष्य
6. गीताभाष्य का उपेद्घात
7. कैम्ब्रिज हिस्ट्री औव इण्डिया, जि.1. पृष्ठ–85–86 ख. हटन, कास्ट इन इण्डिया, आध्याय–11; ग, आर. एस. षर्मा. दी शूद्राज इन एन्सिएण्ट इण्डिया, पृष्ठ–263–264;
8. ह्वीलर, इन्डस सिविलाइजेषन, प्ष्ठ–95;
9. **क.** पिगट, सिविलाइजेषन, पृष्ठ–82–84 **ख.** पिगट प्रिहिसिरिक इण्डिया, पृष्ठ– 201–203 **ग.** मैके, दी इन्ड्स सिविलाइजेषन पृष्ठ, 64–99 घ. पाण्डेय, गोबिन्दचन्द्र, औरिजिन्स औफ बुद्धिज्म, पृष्ठ–252–256;
10. को ददर्ष प्रथमजायमानमस्थःक्तं यदनस्थाविभर्ति भूम्या असुरसृगात्मा कवरित्को विदांसमुपगाप्रष्टुमेतत्–त्र. वे. सं. 2. अ. 3;
11. खाण्डवदहन की कथा इस प्रसंग में स्मरणीय है।
12. य आत्मापहतपाणमाविजि वरो विमृत्युर्विषेको विजिधत्सोऽपिपासः
सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोवेष्टव्यः स विजितासितव्यः–छन्दो 8/7/1
13. आरिजिन्स औव बुद्धज्मि पृष्ठ–295–298
14. टाइलर, प्रिमिटिन कल्चर, जिल्द–2, पृष्ठ–16;
15. प्रजापति इन्द्रविरोचन संवाद, छन्दों 8/7/15;
16. आरिजन्स औव बुद्धिज्म पृष्ठ 301–302;
17. बुद्ध की तिथि परविद्वानों में विवाद रहा है। द्रष्टव्य–विन्टरनित्स जि. 2. पृष्ट– 597; टौमस, दी लाइफ औव बुद्ध पृष्ठ–27;

18. क. नगर कपिलवत्थु, मे राजा सुद्धोदनो पिता मय्हं जनेतिका माता, माया देवी ति वुच्चति, बुद्धवंस पृष्ट–380; ख. मय्हं, भिक्खवे, एतरहि सुद्धोदनो नाम राजा पिता अहोसि, माया नाम देवी माता अहोसि, जनेति, दी. नि. 2. पृष्ठ–8;
ग.कपिलवत्थु नाम नगरं राजधानी, दी. नि. 2.पृष्ठ–8;
19. सो बोधिसत्तो रतनवरो अतुल्यो, मनुदुस्सलोके हितसुसुखत्थाय जातो सक्यान गामे जनपदे लुम्बिनेय्ये, तेनाह तुट्ठा अतिरिव कल्यरूपा सु. नि. पृष्ठ 375;
20. अजु जनपदो राजा हिमवन्तस्स पस्सतो
आदिच्चा नाम गोत्तेन साकिया नाम जातिया।
सु. नि. 3.1.18–19;
21. विनय पिटक, महावग्ग, पृष्ठ 86;
22. दीध निकाय जिल्द 2, पृष्ठ–8;
23. म. वं. पृष्ठ–386;
24. म. नि. 3. पृष्ठ–183–189
25. ''इमेहि लक्खणेहि समन्नागतो अगारं अज्झावसमानो राजा होति चक्कवत्ती पव्वज्मानो बुद्धो''ति निदान कथा पृष्ठ–138;
26. मललसेखर, पालि प्रोपरनेम, जिल्द–1, पृष्ठ– 1053;
27. महावग्ग, पृष्ठ–86;
28. एकूंतिसो वयसा सुमद्दय पब्बजिं किं कुसलानुएसी वसानि पच्चाससमाधिकानं यतो अहं पब्बजितो सुभद्द।
दीघ निकाय, महापरिनिब्बाण सुत्त;
29. नायं ध्म्मो निब्बिदाय न विरागाा न निरोधाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति, यावदेव नेवसञ्ञानासञ्ञायतनूपपत्तिया ति, म. नि.1.216;
30. जातकट्ठकथा, 1. 53;
31. खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्तया'ति, म. नि. 2. 332;
32. माहवग्ग, पृष्ठ–6;
33. ''सले यथा पब्बतमुद्धनिट्ठितो।'' महावग्ग, पृष्ठ–7;
34. महावग्ग पृष्ठ–9–10;
35. बुद्धो सब्बञ्ञयू सब्बदस्सावी आवज्जन पटिबद्धं सब्बञ्ञूतञाणं, मिलिन्द पञ्हो पृष्ठ–105;
36. अली मोनास्टिक बुद्धिज्म, भाग–1 पृष्ठ–100

37. मज्झिम निकाय, भाग–2–पृष्ठ–112;

38. एते खो, भिक्खवे, अभे अन्ते अनुपगम, मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा, महावग्ग, पृष्ठ–13;

40. अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो सेय्योथिदं सम्मादिट्ठि... इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खं समुदयं.. निरोधं निरोधगामिनी पटिपदा अरिय सच्चं, महावग्ग पृष्ठ–13;

41. यह गाथा बौद्धों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। नालन्दा महाविहार के उत्खनन में प्राप्त अनेक सीलों में इस गाथा का उल्लेख है।

42. चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजन हिताय, वहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थााय हिताय देवमनुस्सानं, महावग्ग पृष्ठ–23;

43. सुमंगलनविलासिनी, पृष्ठ–239–241;

44. वही, पृष्ठ 241;

45. ''जनपद चारिकं चरन्ता च महामण्डलं मज्झिममण्डलं अत्तिमण्डलं ति इमेसं तिण्णं मण्डलानं अञ्ञतरस्मिं मण्डले चरन्ति'' समन्तपासादिका 1.187;

46. दीघनिकाय, 2.28;

47. दीघनिकाय–2.80;

48. वयधम्मा सङ्खारा अप्पमादेन सम्पादेथ। दी. नि.2.100;

49. दी. नि. 2. 120;

50. ''यो वो आनन्द मयाधम्मा च विनयो च देसितो पञ्ञतो, सोवो ममच्चयेन सत्था'' दीघनिकाय 2.118;

51. अलं, आवुसो, मा सोचित्थ, मापरिवेदित्थ... इदानि पन मयं यं इच्छिस्सामि तं करस्सिाम, यं न इच्छिस्साम न तं करिस्साम'' ति, दीघ निकाय 2. 125;

52. चुल्लवग्ग पृष्ठ–406;

53. आयस्मा महाकस्सपो आयस्मन्तं उपलिं... वत्थु पि पुच्छि, निदानं पि पुच्छि, पुग्गलं पि पुच्छि, पञ्ञतिं पि पुच्छि, अनुपञ्ञतिं पि .... चूळवग्ग पृष्ठ– 408

54. अथ खो आयस्मा महाकस्सपो आयस्मन्तं आनन्दं... निदानं पि पुच्छि, पुग्गलं पि पुच्छि, चुळवग्ग पृष्ठ–409;

55. चूळवग्ग पृष्ठ– 414 ;

56. अपालिं विनयं पुच्छि, सुत्तन्तानन्द पण्डितं पिटकं तीणि संगीति अकंसु जिन सावका चुळवग्ग पृष्ठ–415;

57. ततो अनन्तरं धम्मसड्.गणि विभड्.ग च कथावत्थु च पुग्गलं, धातु–यमक–पट्ठानं अभिधम्माति वुच्चति, एवंसंवण्णितं सुखुमञाणगोचरं तन्ति संगायित्वा इदं अभिधम्म पिटकं नामाति वत्वा पञ्चअरहन्त–सतानि सज्झायमकंसु–सुमड्.गलविलासिनी, भाग–1 पृ. 120

58. अर्ली मोनास्टिक बुद्धिज्म, 1. 326;

59. तदा वेसालिया भिक्खू अनेको वज्जिपुत्तका सिड्.गलोणं द्वड्.गुल त तथा गामन्तरं पि च आवासाण्डेमताचिण्णं अमथितं जलोगि च निसीदन अदसकं जातरूपादिकं इति, महावग्ग पृष्ठ–14;

60. दुतियं सड्.गहं कत्वा, विसोधेत्वान सासनं अनागते पि कत्वान, हेतुं सद्धामसुद्दिया, समन्त पासादिका पृष्ठ–32;

61. वेसालियं बालुकारामे सन्निसीदित्वा महाकस्सपत्थेरेन सड्.गायितसदिसमेव सब्बं सासनमलं सोधेत्वा पुन पिटकवसेन निकायवसेन अड्.गवसेन धम्मखन्धसेन च सब्बं धम्मं च विनयं च सड्.गायिंसु, समन्तपासादिका, पृष्ठ–30;

62. समन्तपासादिक पृ.–62, महावग्ग पृ. 66–67 पृष्ठ–84, सासनवंस, पृष्ठ–9, दीपवंस, पृष्ठ–62–63;

63. महावसं

64. सम्बुद्धपरिनिब्बाना, द्वीसु वस्स सतेसु च अट्ठतिंसे अतिकन्ते, राजहु पियतिस्सको। सद्धम्मसड्.गहो, पृष्ठ–23;

65. सासनस्स मूलानि ओतरन्तानि परिस्सिस्सामा, सद्धम्मसड्.गहो, पृष्ठ–22;

66. ''तस्मा दानि मुखपाठो ते पिटकं बुद्धवचनं सब्बं साट्ठकथं च पालिं च पोत्थकेसु लिखापेतब्बं भवेय्या'' सद्धम्मसड्.गहो पृष्ठ–26;

67. राजा महाविहारे महासंगीतिकाले अजातसत्तुमहाराजेन कतमण्डपाकारं राजानुभावेन मण्डपं कारापेत्वा सब्बंपोत्थकपण्णं साम्पादेत्वा महारहानि आसनानि मण्डपमज्झे पञ्ञापेत्वा... सद्धम्मसड्.गहो, पृष्ठ–26;

68. सेय्यथापि, भिक्खवे, महासमुद्दो एकरसो लोणरसो, एवमेव खो, भिक्खवे, अयं धम्मविनयो एकरसो विमुत्तिरसो'' खुद्दक निकाय 1.128;

69. महावग्ग पृष्ठ– 15

70. मज्झिम निकाय, 2. 207;

71. सब्बं तं एकरसं विमुत्तिरसमेव होति, एवं रसवसेन एकविधं, समन्तपासादिका पृष्ठ–16;

72. विनयो नाम बुद्धसासनस्स आयु, विनये ठितं सासनं ठितं हो, समन्तपासादिका, पृष्ठ–16;

74. चूळवग्ग पृष्ठ–406;

75. एवं धम्मविनयवसेन दुविधं– समन्तपासादिका, पृष्ठ– 16–17;

76. महावग्ग पृ्ष्ठ–34;

77. धम्मपद पृष्ठ– 32;

78. दीघ निकाय 2,119;

79. सुमङ्.गल विलासिनी पृष्ठ– 16, समन्तपासादिका पृष्ठ–17 सुमङ्.गलविलासिनी–पृष्ठ–17;

81. अट्ठसालिनी पृ.– 15

82. अट्ठसालिनी पृष्ठ–16

83. सद्धम्मसङ्.गहो, पृष्ठ–7

84. धम्मातिरेक धम्माविसेसट्ठन अभिधम्मोति वेदितब्बो, अट्ठसालिनी, 1, 3

85. अभिधम्मपिटकं परमत्थकसलेन भगवता परमत्थबाहुल्लतो देसितत्तो परमत्थदेसना ति वुच्चति, समन्तपासादिका पृष्ठ–20–21;

86. अभिधम्मं पत्वा पन सुत्तन्त भाजनीय, अभिधम्मभाजनीय, पञ्हापुच्छकनयानं वसेन निप्पदेसतो भिभत्ता,अट्ठसालिनी पृष्ठ–3;

87. अट्ठसालिनी, पृष्ठ–17;

88. अट्ठसालिनी, पृष्ठ–22;

89. अट्ठसालिनी, पृष्ठ–21;

90. अट्ठसालिनी, पृष्ठ–21;

91. ठपेत्वा चतुरो पेते निकाये दीघ आदिके।
तदञ्ञं बुद्धवचनं निकायों खुद्वको मतो ति।।
अट्ठसालिनी पृष्ठ–22;

92. सुत्तानं सूचनतो सुवुत्ततो सवनतो च सुदनतो सुत्ताणा सुत्तसभागतो च सुत्तं ति अक्खातं ति, सुमङ्.गलविलासिनी पृष्ठ–23–24

93. अट्ठसालिनी पृष्ठ–22;

94. ‘‘सुत्ताणां मध्ये वा अन्ते वा गाथया यद गीयते’’ अभिधर्म समुच्चय, पृष्ठ–78

95. सकलं पि अभिधम्मपिटकं, निगाथाकसुत्तं यं च अञ्ञं पि अट्ठहि अङे्.गहि असङ्.गहितं बुद्धवचनं, तं वेय्याकरणं ति वेदितब्बं, अट्ठसालिनी पृष्ठ –22;

96. ‘‘व्याकरणमेव वेय्याकरणं’’ ति नेत्तिप्पकरण अट्ठकथा, पृष्ठ– 28।

97. व्याक्रियन्ते व्युत्पादयन्ते असाधुषब्देभ्यो विविध्य इसप्यन्ते साधुषब्दा अनेन इति तद् व्याकरणम् महाभाब्य, पृष्ठ–2,

98. अपि च सूत्रेषु निरूपितार्थस्य स्फुटीकरणम्। विवित्याभिसन्धि व्याकरणम्– अभिधर्म समुच्चय, पृष्ठ–78

99. धम्मपद–थेरगाथा–थेरीगाथा सुत्तनिपाते नो–सुत्तनामिका सुद्धिकगाथा च गाथा ति वेदितब्बा, अट्ठसालिनी पृष्ठ–22;

100. गाथा कतमा। सुत्रेसु पादयोगेन देष्यते, द्विपदी त्रिपदी चतुष्पदी पचपदी षटपदी वा, अभिधर्म समुदच्चय, पृष्ठ–78.

101. सोमनस्स ञणमयि–गाथापिटिसंयुत्ता द्वेअसीति सुत्तन्ता अदानं ति वेदितब्बा, अट्ठसालिनी पृष्ठ–22;

102. तयिदं कत्थचि गाथाबन्धवसेन कत्थचि वाक्यवसेन पवत्तं, सारत्थदीपनी पृष्ठ 1. 98;

103. आदि हेतं भगवता ति आदिनयप्पवतत्ता दसुत्तरसतसुत्तन्ता इतिवुत्तकं ति, वेदितब्बं,'' अट्ठ. पृष्ठ–22;

104. अपण्णकजातकादीनि पञ्ञासाधिकानि पञ्च जातकसतानि जातक ति वेदितब्बं, अट्ठसालिनी, पृष्ठ–23;

105. सब्बेपि अच्छरियब्भुतधम्म–पटिसंयुत्ता सुत्तन्ता अब्भुत धम्माति वेदिताब्बा, अट्ठसालिनी, पृष्ठ–23;

106. अड्.गुतर निकाय–2.पृष्ठ–139;

107. यत्रश्रावक बोधिसत्व तथागतानं परमादभुताष्चर्य धमाणां देषना, अभिधर्म समुच्चय, पृष्ठ–79;

108. ''सति'' पि पञ्ञाविस्सजन भावे सगाथकत्ते च केसुचि
सुत्तन्तेसु वेदस्स लभापनतो वेदल्ल सञ्ञा पतिट्ठिथाति, नेतिप्पकरण अट्ठकथा पृष्ठ–1

109. अट्ठसालिनी–पृष्ठ– 23;

110. अट्ठसालिनी– पृष्ठ–23;

111. द्वासीति बुद्धतो गण्हिं द्वे सहस्सानि भिक्खुतो, चतुरासीति सहस्सानि ये मे धम्मा पवत्तिनो ति। अट्ठसालिनी पृष्ठ–23;

112. अट्ठसालिनी पृष्ठ–23;

113. वीतसोक थेरस्स गाथावण्णना गाथा संख्या 169–70; तथा गाथा संख्या 598–546 तक तिस्स कुमार की रचना है। दोनो– वीतासोक और तिस्स कुमार अशोक के छोटे भाई थे।